

()

नियमसार कलश

पद्यानुवाद

(हरिगीत)

जो मोह में मेरे सदृश हैं मुग्ध वश में काम के ।
आपके होते हुए सुगतादि को मैं क्यों नमूँ ?
वागीश गिरधर शिव सुगत कुछ भी कहो या न कहो ।
जितभवी जिनवरदेव जो उनके चरण में मैं नमूँ ॥१॥

(दोहा)

श्री जिनवर का मुखकमल जिसका वाहन दिव्य ।
उभयनयों से वाच्य जो वह ध्वनि परम पवित्र ॥२॥

(३)

(हरिगीत)

सिद्धान्तलक्ष्मी के पती श्री सिद्धसेन यतीन्द्र को ।
तर्काम्बुजों के सूर्य श्री अकलंकदेव मुनीन्द्र को ॥
शब्दसागर चन्द्रमा श्री पूज्यपाद यतीन्द्र को ।
वन्दन करूँ कर जोड़कर श्री वीरनन्दि व्रतीन्द्र को ॥३॥

(दोहा)

भव्यों का भव अन्त हो निज आत्म की शुद्धि ।
नियमसार की तात्पर्य वृत्ति कहुँ विशुद्ध ॥४॥
गुणधर गणधर से रचित श्रुतधर की सन्तान ।
परमागम का कथन हम कैसे करें बखान ॥५॥

(४)

परमागम की पुष्ट रुचि प्रेरित करे अनल्प ।
इसीलिये यह लिख रहे और न कोई विकल्प ॥६॥
सात तत्त्व छह द्रव्य अर नवार्थ प्रत्याख्यान ।
पाँचों अस्तीकाय का किया गया व्याख्यान ॥७॥

जीव अधिकार

(रोला)

शुद्धभाव से नाश किया है कामभाव का ।
तीन लोक में पूज्य देवगण जिनको नमते ॥
ज्ञान राज्य के राजा नाशक कर्मबीज के ।
समोसरन के वासी जग में वीर जिनेश्वर ॥८॥

(५)

कभी कामिनी रति सुख में यह रत रहता है।
 कभी संपती की रक्षा में उलझा रहता ॥
 किन्तु जो पण्डितजन जिनपथ पा जाते हैं।
 हो जाते वे मुक्त आत्मा में रत होकर ॥९॥
 विपर्यास से रहित अनुत्तम रत्नत्रय को।
 पाकर मैं तो वरण करूँ अब शिवरमणी को ॥
 प्राप्त करूँ मैं निश्चय रत्नत्रय के बल से।
 अरे अतीन्द्रिय अशरीरी आत्मीक सुख को ॥१०॥
 रत्नत्रय की परिणति से परिणमित आत्मा।
 श्रमणजनों के लिए सहज यह मोक्षमार्ग है ॥

(६)

शत इन्द्रों से पूज्य ज्ञान साम्राज्य अधपती।
 कामजयी लौकान्तिक देवों के अधिनायक ॥
 पाप विनाशक भव्यनीरजों के तुम सूरज।
 नेमीश्वर सुखभूमि सुख दे दे भवभयनाशक ॥१३॥
 (हरिगीत)
 लोकमानस रूप से रवितेज अपने तेज से।
 जो हरे निर्मल करें दशदिश कान्तिमय तनतेज से ॥
 जो दिव्यध्वनि से भव्यजन के कान में अमृत भरें।
 उन सहस्र अठ लक्षण सहित जिन-सूरि को वंदन करें ॥२॥^१

१. समयसार, कलश २४

(८)

दर्शन-ज्ञान-चरित आत्म से भिन्न नहीं हैं।
 जो जाने वह भव्य न जावे जननि उदर में ॥११॥
 (दोहा)
 भवभयभेदक आस की भक्ति नहीं यदि रंच।
 तो तू है मुख मगर के भवसागर के मध्य ॥१२॥
 (रोला)
 इष्ट अर्थ की सिद्धि होती है सुबोध से।
 अर सुबोध उपलब्धी होती है सुशास्त्र से ॥
 और आस से शास्त्र पूज्य हैं आस इसलिये।
 क्रिया गया उपकार संतजन कभी न भूलें ॥१॥^१

१. आचार्य श्री विद्यानन्द स्वामी द्वारा कहे गये कलश का पद्यानुवाद

(७)

(रोला)
 अलिगण स्वयं समा जाते ज्यों कमल पुष्प में।
 त्यों ही लोकालोक लीन हों ज्ञान कमल में ॥
 जिनके उन श्री नेमिनाथ के चरण जजूँ मैं।
 हो जाऊँ मैं पार भवोदधि निज भुजबल से ॥१४॥
 (हरिगीत)
 जो न्यूनता विपरीतता अर अधिकता से रहित है।
 सन्देह से भी रहित है स्पष्टता से सहित है ॥
 जो वस्तु जैसी उसे वैसी जानता जो ज्ञान है।
 जाने जिनागम वे कहें वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ॥३॥^१

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार, छन्द ४२

(९)

मुक्तिमग के मग तथा जो ललित में भी ललित हैं ।
जो भविजनो के कर्ण-अमृत और अनुपम शुद्ध हैं ॥
भविविजन के उग्र दावानल शमन को नीर हैं ।
मैं नमूँ उन जिनवचन को जो योगिजन के वंछ हैं ॥१५॥

(रोला)

जिनपति द्वारा कथित मार्गसागर में स्थित ।
अरे तेज के पुंज विविध विध किरणों वाले ॥
छह द्रव्यों रूपी रत्नों को तीक्ष्णबुद्धि जन ।
धारण करके पा जाते हैं मुक्ति सुन्दरी ॥१६॥
जिनपति द्वारा कथित ज्ञान के भेद जानकर ।
परभावों को त्याग निजातम में रम जाते ॥

(१०)

कर प्रवेश चित्त्वमत्कार में वे मुमुक्षुगण ।
अल्पकाल में पा जाते हैं मुक्तिसुन्दरी ॥१७॥
इसप्रकार का भेदज्ञान पाकर जो भविजन ।
भवसागर के मूलरूप जो सुख-दुख हैं ॥
सुकृत-दुष्कृत होते जो उनके भी कारण ।
उन्हें छोड़ वे शाश्वत सुख को पा जाते हैं ॥१८॥

(दोहा)

करो उपेक्षा देह की परिग्रह का परिहार ।
अव्याकुल चैतन्य को भावो भव्य विचार ॥१९॥

(११)

(रोला)

यदि मोह का निर्मूलन अर विलय द्वेष का ।
और शुभाशुभ रागभाव का प्रलय हो गया ॥
तो पावन अतिश्रेष्ठज्ञान की ज्योति उदित हो ।
भेदज्ञानरूपी तरु का यह फल मंगलमय ॥२०॥
जिसकी विकसित सहजदशा अंतर्मुख जिसने ।
तमोवृत्ति को नष्ट किया है निज ज्योति से ॥
सहजभाव से लीन रहे चित् चमत्कार में ।
सहजज्ञान जयवंत रहे सम्पूर्ण मोक्ष में ॥२१॥

(१२)

(सोरठा)
सहजज्ञान सर्वस्व शुद्ध चिदातम आतमा ।
उसे जान अविलम्ब निर्विकल्प में हो रहा ॥२२॥
(दोहा)
दर्शनज्ञानचरित्रमय चित् सामान्यस्वरूप ।
मार्ग मुमुक्षुओं के लिए अन्य न कोई स्वरूप ॥२३॥

(वीर)

परभावों के होने पर भी परभावों से भिन्न जीव है ।
सहजगुणों की मणियों का निधि है संपूरण शुद्ध जीव यह ॥
ज्ञानानन्दी शुद्ध जीव को शुद्धदृष्टि से जो भजते हैं ।
वही पुरुष सुखमय अविनाशी मुक्तिसुन्दरी को वरते हैं ॥२४॥

(१३)

इसप्रकार गुणपर्यायों के होने पर भी कारण-आत्म ।
गहराई से राजमान है श्रेष्ठनों के हृदयकमल में ॥
स्वयं प्रतिष्ठित समयसारमय शुद्धात्म को हे भव्योत्तम ।
अभी भज रहे अरे उसी को गहराई से भजो निरन्तर ॥२५॥

(रोला)

सदा सहित होने पर भी जो सदा रहित है ।
इन सबसे जो जीव उसी को मैं भाता हूँ ॥
सब अर्थों की सिद्धि हेतु हे भविजन जानो ।
सहज आतमाराम उसी को मैं ध्याता हूँ ॥२६॥

(१४)

(रोला)
अरे देखकर नराधिपों का वैभव जड़मति ।
क्यों पाते हो क्लेश पुण्य से यह मिलता है ॥
पुण्य प्राप्त होता है जिनवर की पूजन से ।
यदि हृदय में भक्ति स्वयं सब पा जाओगे ॥२९॥

(दोहा)

परमगुरु की कृपा से मोही रागी जीव ।
समयसार को जानकर शिव श्री लहे सदीव ॥३०॥
भावकरम के रोध से द्रव्य करम का रोध ।
द्रव्यकरम के रोध से हो संसार निरोध ॥३१॥

(१६)

बहुविभाव होने पर भी हैं शुद्धदृष्टि जो ।
परमतत्त्व के अभ्यासी निष्णात पुरुष वे ॥
'समयसार से अन्य नहीं है कुछ भी' हूँ ऐसा ।
मान परमश्री मुक्तिवधू के वल्लभ होते ॥२७॥

(वीर)

दैवयोग से मानुष भव में विद्याधर के भवनों में ।
स्वर्गों में नरकों में अथवा नागपती के नगरों में ॥
जिनमंदिर या अन्य जगह या ज्योतिषियों के भवनों में ।
कहीं रहूँ पर भक्ति आपकी रहे निरन्तर नजरों में ॥२८॥

(१५)

(सोरठा)
करें शुभाशुभभाव, मुक्तिमार्ग जाने नहीं ।
अशरण रहें सदीव मोह मुग्ध अज्ञानि जन ॥३२॥

(दोहा)

कर्मजनित सुख त्यागकर निज में रमें सदीव ।
परम अतीन्द्रिय सुख लहें वे निष्कर्मी जीव ॥३३॥
हममें कोई विभाव न हमें न चिन्ता कोई ।
शुद्धात्म में मगन हम अन्योपाय न होई ॥३४॥

(रोला)

संसारी के समलभाव पाये जाते हैं ।
और सिद्ध जीवों के निर्मलभाव सदा हों ॥

(१७)

कहता यह व्यवहार किन्तु बुधजन का निर्णय ।
 निश्चय से शुद्धात्म में न बंध-मोक्ष हों ॥३५॥
 (रोला)
 उभयनयों में जो विरोध है उसके नाशक ।
 स्याद्वादमय जिनवचनों में जो रमते हैं ॥
 मोह वमन कर अनय-अखंडित परमज्योतिमय ।
 स्वयं शीघ्र ही समयसार में वे रमते हैं ॥४॥^१
 जिन चरणों के प्रवर भक्त जिनसत्पुरुषों ने ।
 नयविभाग का नहीं किया हो कभी उल्लंघन ॥

१. समयसार : आत्मख्याति, कलश ४

(१८)

वे पाते हैं समयसार यह निश्चित जानो ।
 आवश्यक क्यों अन्य मतों का आलोड़न हो ॥३६॥
 अजीव अधिकार
 (हरिगीत)
 गलन से परमाणु पुद्गल खंध पूरणभाव से ।
 अर लोकयात्रा नहीं संभव बिना पुद्गल द्रव्य के ॥३७॥
 (सोरठा)
 थूलथूल अर थूल स्थूल-सूक्ष्म पहिचानिये ।
 सूक्ष्मथूलरु सूक्ष्म सूक्ष्म-सूक्ष्म जानिये ॥५॥^१

१. मार्गप्रकाश ग्रंथ में कहे गये श्लोक का पद्यानुवाद

(१९)

(हरिगीत)
 अरे काल अनादि से अविवेक के इस नृत्य में ।
 बस एक पुद्गल नाचता चेतन नहीं इस कृत्य में ॥
 यह जीव तो पुद्गलमयी रागादि से भी भिन्न है ।
 आनन्दमय चिद्धाव तो दृगज्ञानमय चैतन्य है ॥६॥^१
 (दोहा)
 पुद्गल में रति मत करो हे भव्योत्तम जीव ।
 निज में रति से तुम रहो शिवश्री संग सदैव ॥३८॥

१. समयसार : आत्मख्याति, कलश ४४

(२०)

(वीर)
 छह प्रकार के खंध और हैं चार भेद परमाणु के ।
 हमको क्या लेना-देना इन परमाणु-स्कंधों से ॥
 अक्षय सुखनिधि शुद्धात्म जो उसे नित्य हम भाते हैं ।
 उसमें ही अपनापन करके बार-बार हम ध्याते हैं ॥३९॥
 (दोहा)
 जब जड़ पुद्गल स्वयं में सदा रहे जयवंत ।
 सिद्धजीव चैतन्य में क्यों न रहे जयवंत ॥४०॥
 (हरिगीत)
 अष्टविध स्पर्श अन्तिम चार में दो वर्ण इक ।
 रस गंध इक परमाणु में हैं अन्य कुछ भी है नहीं ॥७॥^१

१. मार्गप्रकाश ग्रंथ में कहे गये श्लोक का पद्यानुवाद

(२१)

(दोहा)

वरणादि परमाणु में रहें न कारज सिद्धि ।
माने भवि शुद्धात्म की करे भावना नित्य ॥४१॥
जिसप्रकार जिननाथ के कामभाव न होय ।
उस प्रकार परमाणु के शब्दोच्चार न होय ॥४२॥

(हरिगीत)

जिनवरकथित सन्मार्ग से तत्त्वार्थ को पहिचान कर ।
पररूप चेतन-अचेतन को पूर्णतः परित्याग कर ॥
हे भव्यजन! नित ही भजो तुम निर्विकल्प समाधि में ।
निजरूप ज्ञानानन्दमय चित्त्वमत्कारी आत्म को ॥४३॥

(२२)

सब द्रव्यों में परिणमन काल बिना न होय ।
और परिणमन के बिना कोई वस्तु न होय ॥८॥^१
घट बनने में निमित्त है ज्यों कुम्हार का चक्र ।
द्रव्यों के परिणमन में त्यों निमित्त यह द्रव्य ॥
इसके बिन न कोई भी द्रव्य परिणमित होय ।
इसकारण ही सिद्ध रे इसकी सत्ता होय ॥४८॥
जिन आगम आधार से धर्माधर्माकाश ।
जिय पुद्गल अर काल का होता है आभास ॥४९॥

१. मार्गप्रकाश : कलश ४७

(२४)

पुद्गल अचेतन जीव चेतन भाव अपरमभाव में ।
निष्पन्न योगीजनों को ये भाव होते ही नहीं ॥४४॥
जड़ देह में न द्वेष चेतन तत्त्व में भी राग ना ।
शुद्धात्मसेवी यतिवरों की अवस्था निर्मोह हो ॥४५॥

(दोहा)

धर्माधर्माकाश को द्रव्यरूप से जान ।
भव्य सदा निज में बसो ये ही काम महान ॥४६॥
समय निमिष काष्ठा कला घड़ी आदि के भेद ।
इनसे उपजे काल यह रंच नहीं सन्देह ॥
पर इससे क्या लाभ है शुद्ध निरंजन एक ।
अनुपम अद्भुत आतमा में ही रहूँ हमेश ॥४७॥

(२३)

(त्रिभंगी)

जय भव भय भंजन, मुनि मन रंजन, भव्यजनों को हितकारी ।
यह षट्द्रव्यों का, विशद विवेचन, सबको हो मंगलकारी ॥५०॥

(हरिगीत)

आगम उदधि से सूरि ने जिनमार्ग की षट्द्रव्यमय ।
यह रत्नमाला भव्यकण्ठाभरण गूँथी प्रीति से ॥५१॥
मुमुक्षुओं के कण्ठ की शोभा बढ़ाने के लिए ।
षट् द्रव्यरूपी रत्नों का मैंने बनाया आभरण ॥
अरे इससे जानकर व्यवहारपथ को विज्ञान ।
परमार्थ को भी जानते हैं जान लो हे भव्यजन ॥५२॥

(२५)

जिस भव्य के मुख कमल में ये ललितपद वसते सदा ।
उस तीक्ष्णबुद्धि पुरुष को शुद्धातमा की प्राप्ति हो ॥
चित्त में उस पुरुष के शुद्धातमा नित ही वसे ।
इस बात में आश्चर्य क्या यह तो सहज परिणमन है ॥५३॥

शुद्धभाव अधिकार

(रोला)

सकलविलय से दूर पूर सुख सागर का जो ।
क्लेशोदधि से पार शमित दुर्वारमार जो ॥
शुद्धज्ञान अवतार दुरित तरु का कुठार जो ।
समयसार जयवंत तत्त्व का एक सार जो ॥५४॥

(२६)

चिदानन्द से भरा हुआ नभ सम अकृत जो ।
राग-द्वेष से रहित एक अविनाशी पद है ॥
चैतन्यामृत पूर चतुर पुरुषों के गोचर ।
आतम क्यों न रुचे करे भोगों की वांछा ॥५५॥

(हरिगीत)

पावें न जिसमें प्रतिष्ठा बस तैरते हैं बाह्य में ।
ये बद्धस्पृष्टादि सब जिसके न अन्तरभाव में ॥
जो है प्रकाशित चतुर्दिक् उस एक आत्मस्वभाव का ।
हे जगतजन ! तुम नित्य ही निर्मोह हो अनुभव करो ॥१॥^१

१. समयसार की १४वीं गाथा की आत्मख्याति टीका में समागत कलश ११

(२७)

(दोहा)
चिदानन्द निधियाँ बसें मुझमें नेकानेक ।
विपदाओं का अपद मैं नित्य निरंजन एक ॥५६॥

(वसंततिलका)

निज रूप से अति विलक्षण अफल फल जो ।
तज सर्व कर्म विषवृक्षज विष-फलों को ॥
जो भोगता सहजसुखमय आतमा को ।
हो मुक्तिलाभ उसको संशय न इसमें ॥५७॥

(दोहा)

विरहित ग्रंथ प्रपंच से पंचाचारी संत ।
पंचमगति की प्राप्ति को पंचमभाव भजंत ॥५८॥

(२८)

(हरिगीत)
भोगियों के भोग के हैं मूल सब शुभकर्म जब ।
तत्त्व के अभ्यास से निष्णातचित मुनिराज तब ॥
मुक्त होने के लिए सब क्यों न छोड़ें कर्म शुभ ।
क्यों ना भजें शुद्धातमा को प्राप्त जिससे सर्व सुख ॥५९॥
चैतन्यशक्ति से रहित परभाव सब परिहार कर ।
चैतन्यशक्ति से सहित निजभाव नित अवगाह कर ॥
है श्रेष्ठतम जो विश्व में सुन्दर सहज शुद्धातमा ।
अब उसी का अनुभव करो तुम स्वयं हे भव्यातमा ॥१०॥^१

१. समयसार, कलश ३५

(२९)

(दोहा)
चित् शक्ति सर्वस्व जिन, केवल वे हैं जीव ।
उन्हें छोड़कर और सब, पुद्गलमयी अजीव ॥११॥^१

(रोला)
रहे निरन्तर ज्ञानभावना निज आतम की ।
जिनके वे नर भव विकल्प में नहीं उलझते ॥
परपरिणति से दूर समाधि निर्विकल्प पा ।
पा जाते हैं अनघ अनूपम निज आतम को ॥६०॥
भक्तामर की मुकुट रत्नमाला से वंदित ।
चरणकमल जिनके वे महावीर तीर्थकर ॥

१. समयसार, कलश ३६

(३०)

रक्षक हो मम रागोदधि का पूर पार जो ।
सुखसागरजल निर्विकार है समयसार जो ॥६२॥
बुधजन जिनको कहें कल्पनामात्र रम्य है
उन सुख-दुख से रहित नित्य जो निर्विकार है ।
विविधविकल्प विहीन पद्मप्रभ मुनिवर मन में
जो संस्थित वह परमतत्त्व जयवंत रहे नित ॥६३॥
सर्वतत्त्व में सार मगन जो निजपरिणति में
सुखसागर में सदा खान जो गुण मणियों की ।
उस आतम को भजो निरंतर भव्यभाव से
भव्यभावना से प्रेरित हो भव्य आत्मन् ॥६४॥

(३२)

का पावन उपदेश प्राप्त कर शीलपोत से ।
संत भवोदधि तीर प्राप्त कर लेते सत्वर ॥६१॥
(हरिगीत)
जो आतमा स्वरव्यंजनाक्षर-अंक के समुदाय से ।
स्पर्श रस गंध रूप से अर अहित से अंधकार से ॥
भूमि जल से अनल से अर अनिल की अणु राशि से ।
दिगचक्र से भी रहित वह नित रहे शाश्वत भाव से ॥१२॥^१

(रोला)
परपरिणति से दूर और दुष्कर्म पार है ।
अस्तमार दुर्वार पापवन का कुठार है ॥

१. अमृताशीति, श्लोक ५७

(३१)

(दोहा)
भवभोगों से पराङ्गमुख भवदुखनाशन हेतु ।
ध्रुव निज आतम को भजो अध्रुव से क्या हेतु ॥६५॥
जन्म मृत्यु रोगादि से रहित अनाकुल आत्म ।
अमृतमय अच्युत अमल मैं बंदू शुद्धात्म ॥६६॥
सूत्रकार मुनिराज ने आतम दियो बताय ।
उससे भवि मुक्ति लहें मैं पूजूं मन लाय ॥६७॥

(रोला)
ज्ञानरूप अक्षय विशाल निर्द्वन्द्व अनूपम
आदि-अंत अर दोष रहित जो आत्मतत्त्व है ।

(३३)

उसको पाकर भव्य भवजनित भ्रम से छूटें
 उसमें रमकर भव्य मुक्ति रमणी को पाते ॥६८॥
 (मनहरण कवित्त)
 इस भाँति परपरिणति का उच्छेद कर ।
 करता-करम आदि भेदों को मिटा दिया ॥
 इस भाँति आतमा का तत्त्व उपलब्ध कर ।
 कल्पनाजन्य भेदभाव को मिटा दिया ॥
 ऐसा यह आतमा चिन्मात्र निरमल ।
 सुखमय शान्तिमय तेज अपना लिया ॥
 आपनी ही महिमामय परकाशमान ।
 रहेगा अनंतकाल जैसा सुख पा लिया ॥१३॥^१

१. प्रवचनसार की तत्त्वप्रदीपिका टीका, छन्द ८

(३४)

(मनहरण कवित्त)
 ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अंधकार का ।
 नाशक ध्रुव नित्य आनन्द का है धारक जो ॥
 अमूरतिक आतमा अत्यन्त अविचल ।
 स्वयं में ही उत्तम सुशील का है कारक जो ॥
 भवभयहरण पति मोक्षलक्ष्मी का अति ।
 ऐश्वर्यवान नित्य आतम विलासी जो ॥
 करता हूँ वंदना मैं आत्मदेव की सदा ।
 अलख अखण्ड पिण्ड चण्ड अविनाशी जो ॥६९॥

(३५)

(रोला)
 जड़ कर्मों से भिन्न आतमा होता है ज्यों ।
 भावकर्म से भिन्न आतमा होता है त्यों ॥
 सभी स्वयं के गुणपर्यायों से अभिन्न हैं ।
 परद्रव्यों से भिन्न सदा सब ही होते हैं ॥१४॥^१
 (रोला)
 अरे बंध हो अथवा न हो शुद्धजीव तो ।
 सदा भिन्न ही विविध मूर्त द्रव्यों से जानो ॥

१. आचार्य पद्मनन्दी कृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका के एकत्वसप्तति नामक अधिकार का ७९वाँ छंद

(३६)

बुधपुरुषों से कहे हुए जिनदेव वचन इस ।
 परमसत्य को भव्य आतमा तुम पहिचानो ॥७०॥
 (दोहा)
 पहले से ही शुद्धता जिनमें पाई जाय ।
 उन सुधिजन कुधिजनों में कुछ भी अंतर नाय ॥
 किस नय से अन्तर करूँ उनमें समझ न आय ।
 मैं पूँछूँ इस जगत से देवे कोई बताय ॥७१॥
 (हरिगीत)
 शुद्ध है यह आतमा अथवा अशुद्ध इसे कहें ।
 अज्ञानि मिथ्यादृष्टि के ऐसे विकल्प सदा रहें ॥

(३७)

कार्य-कारण शुद्ध सारासारग्राही बुद्धि से।
जानते सदृष्टि उनकी वंदना हम नित करें ॥७२॥

(रोला)

ज्यों दुर्बल को लाठी है हस्तावलम्ब त्यों।

उपयोगी व्यवहार सभी को अपरमपद में ॥
पर उपयोगी नहीं रंच भी उन लोगों को।

जो रमते हैं परम-अर्थ चिन्मय चिद्घन में ॥१५॥^१

(सोरठा)

अन्तर नहिं है रंच, संसारी अर सिद्ध में।

बतलाते यह मर्म, शुद्धतत्त्व के रसिकजन ॥७३॥

१. समयसार, कलश ५

(३८)

(हरिगीत)

मैं तो सदा ही शुद्ध परमानन्द चिन्मयज्योति हूँ।
सेवन करें सिद्धान्त यह सब ही मुमुक्षु बन्धुजन ॥
जो विविध परभाव मुझ में दिखें वे मुझ से पृथक्।
वे मैं नहीं हूँ क्योंकि वे मेरे लिए परद्रव्य हैं ॥१६॥^१

(सोरठा)

वे न हमारे भाव, शुद्धात्म से अन्य जो।

ऐसे जिनके भाव, सिद्धि अपूर्व वे लहें ॥७४॥

१. समयसार, आत्मख्याति, कलश १८५

(३९)

(दोहा)

आत्मबोध ही बोध है, निश्चय दर्शन जान।

आत्मस्थिति चारित्र है युति शिवमग पहचान ॥१७॥^१

(हरिगीत)

जयवंत है सद्बोध अर सदृष्टि भी जयवंत है।

अर चरण भी सुविशुद्ध जो वह भी सदा जयवंत है ॥

अर पापपंकविहीन सहजानन्द आत्मतत्त्व में।

ही जो रहे, वह चेतना भी तो सदा जयवंत है ॥७५॥

१. पद्मनदिपंचविंशतिका : एकत्वसप्तति छन्द १४

(४०)

अहिंसा परमब्रह्म है सारा जगत यह जानता।

अर गृहस्थ आश्रम में सदा आरंभ होता नियम से ॥

बस इसलिए नमिदेव ने दो विध परिग्रह त्यागकर।

छोड़ विकृत वेश सब निर्ग्रन्थपन धारण किया ॥१८॥^१

व्यवहारचारित्र अधिकार

(हरिगीत)

त्रसघात के परिणाम तम के नाश का जो हेतु है।

और थावर प्राणियों के विविध वध से दूर है ॥

आनन्द सागरपूर सुखप्रद प्राणियों को लोक के।

वह जैनदर्शन जगत में जयवंत वर्ते नित्य ही ॥७६॥

१. वृहत् स्वयंभूस्तोत्र : ११९वाँ छन्द नमिनाथ भगवान की स्तुति

(४१)

जो पुरुष बोलें सत्य अति स्पष्ट वे सब स्वर्ग की ।
 देवांगनाओं के सुखों को भोगते भरपूर हैं ॥
 इस लोक में भी सज्जनों से पूज्य होते वे पुरुष ।
 इसलिए इस सत्य से बढकर न कोई व्रत कहा ॥७७॥
 अचौर्यव्रत इस लोक में धन सम्पदा का हेतु है ।
 परलोक में देवांगनाओं के सुखों का हेतु है ॥
 शुद्ध एवं सहज निर्मल परिणति के संग से ।
 परम्परा से मुक्तिवधु का हेतु भी कहते इसे ॥७८॥
 कामी पुरुष यदि तू सदा ही कामनी की देह के ।
 सौन्दर्य के संबंध में ही सोचता है निरन्तर ॥

(४२)

तेरे लिये मेरे वचन किस काम के किस हेतु से ।
 निज रूप को तज मोह में तू फंस रहा है निरन्तर ॥७९॥
 हे भव्यजन ! भवभीरुता बस परिग्रह को छोड़ दो ।
 परमार्थ सुख के लिए निज में अचलता धारण करो ॥
 जो जगतजन को महादुर्लभ किन्तु सज्जन जनों को ।
 आश्चर्यकारी है नहीं आश्चर्य दुर्जन जनों को ॥८०॥
 मुक्तिकान्ता की सखी जो समिति उसको जानकर ।
 जो संत कंचन-कामिनी के संग को परित्याग कर ॥
 चैतन्य में ही रमण करते नित्य निर्मल भाव से ।
 विलग जग से निजविहारी मुक्त ही हैं संत वे ॥८१॥

(४३)

जयवंत है यह समिति जो त्रस और थावर घात से ।
 संसारदावानल भयंकर क्लेश से अतिदूर है ॥
 मुनिजनों के शील की है मूल धोती पाप को ।
 यह मेघमाला सींचती जो पुण्यरूप अनाज को ॥८२॥
 समिति विरहित काम रोगी जनों का दुर्भाग्य यह ।
 संसार-सागर में निरंतर जन्मते-मरते रहें ॥
 हे मुनिजनो ! तुम हृदयघर में सावधानी पूर्वक ।
 जगह समुचित सदा रखना मुक्ति कन्या के लिए ॥८३॥

(दोहा)

जो पाले निश्चय समिति, निश्चित मुक्ति जाँहि ।
 समिति भ्रष्ट तो नियम से भटकें भव के माँहि ॥८४॥

(४४)

(वीर)

जान लिये हैं सभी तत्त्व अर दूर सर्व सावधों से ।
 अपने हित में चित्त लगाकर सब प्रकार से शान्त हुए ॥
 जिनकी वाणी स्वपर हितकरी संकल्पों से मुक्त हुए ।
 मुक्ति भाजन क्यों न हो जब सब प्रकार से मुक्त हुए ॥१९॥^१

(दोहा)

आत्मनिरत मुनिवरों के अन्तर्जल्प विरक्ति ।
 तब फिर क्यों होगी अरे बहिर्जल्प अनुरक्ति ॥८५॥

(हरिगीत)

जो सभी के प्रति दया समता समाधि के भाव से ।
 नित्य पाले यम-नियम अर शान्त अन्तर बाह्य से ॥

१. आत्मानुशासन, छन्द २२६

(४५)

शास्त्र के अनुसार हित-मित असन निद्रा नाश से ।
वे मुनीजन ही जला देते क्लेश के जंजाल को ॥२०॥^१
भक्त के हस्ताग्र से परिशुद्ध भोजन प्राप्त कर ।
परिपूर्ण ज्ञान प्रकाशमय निज आत्मा का ध्यान धर ॥
इसतरह तप तप तपस्वी निरन्तर निज में मगन ।
मुक्तिरूपी अंगना को प्राप्त करते संतजन ॥८६॥
उत्तम परमजिन मुनि के सुखशांति अर मैत्री सहित ।
आदाननिक्षेपण समिति सब समितियों में शोभती ॥
हे भव्यजन! तुम सदा ही इस समिति को धारण करो ।
जिससे तुम्हें भी प्राप्त हो प्रियतम परम श्री कामिनी ॥८७॥

१. आत्मानुशासन, छन्द २२५

(४६)

(दोहा)
समिति सहित मुनिवरों को उत्तम फल अविलम्ब ।
केवल सौख्य सुधामयी अकथित और अचिन्त्य ॥९०॥

(रोला)

जो जिनेन्द्र के चरणों को स्मरण करे नित ।
बाह्य और आन्तरिक ग्रंथ से सदा रहित हैं ॥
परमागम के अर्थों में मन चिन्तन रत है ।
उन जितेन्द्रियों के तो गुप्ति सदा ही होगी ॥९१॥
भवभयकारी वाणी तज शुध सहज विलसते ।
एकमात्र कर ध्यान नित्य चित् चमत्कार का ॥

(४८)

आत्मचिंतन में परायण और जिनमत में कुशल ।
उन यतिवरों को यह समिति है मूल शिव साम्राज्य की ॥
कामबाणों से विंधे हैं हृदय जिनके अरे उन ।
मुनिवरों के यह समिति तो हमें दिखती ही नहीं ॥८८॥

(रोला)

दीक्षाकांतासखी परमप्रिय मुक्तिरमा को ।
भवतपनाशक चन्द्रप्रभसम श्रेष्ठ समिति जो ॥
उसे जानकर हे मुनि तुम जिनमत प्रतिपादित ।
तप से होनेवाले फल को प्राप्त करोगे ॥८९॥

(४७)

पापतिमिर का नाश सहज महिमा निजसुख की ।
मुक्तिपुरी को प्राप्त करें भविजीव निरन्तर ॥९२॥

(सोरठा)

छोड़ो अन्तर्जल्प बहिर्जल्प को छोड़कर ।
दीपक आतमराम यही योग संक्षेप में ॥९१॥^१
(दोहा)

जो ध्यावे शुद्धात्मा तज कर काय विकार ।
जन्म सफल है उसी का शेष सभी संसार ॥९३॥

(हरिगीत)

अप्रशस्त और प्रशस्त सब मनवचन के समुदाय को ।
तज आत्मनिष्ठा में चतुर पापाटवी दाहक मुनी ॥

१. आचार्य पूज्यपाद : समाधितंत्र, श्लोक १७

(४९)

चिन्मात्र चिन्तामणि शुद्धाशुद्ध विरहित प्राप्त कर ।
अनंतदर्शनज्ञानसुखमय मुक्ति की प्राप्ति करें ॥१४॥

(सोरठा)

दैहिक क्रिया कलाप भव के कारण भाव सब ।
तज निज आतम माँहि रहना कायोत्सर्ग है ॥२२॥^१

(दोहा)

परिस्पन्दमय देह यह मैं हूँ अपरिस्पन्द ।
यह मेरी हूँ व्यवहार यह तजू इसे अविलम्ब ॥१५॥

१. तत्त्वानुशासन

(५०)

(हरिगीत)

विकसित कमलवत नेत्र पुण्य निवास जिनका गोत्र है ।
हैं पण्डिताम्बुज सूर्य मुनिजन विपिन चैत्र वसंत हैं ॥
जो कर्मसेना शत्रु जिनका सर्वहितकर चरित है ।
वे सुत सुसीमा पद्मप्रभजिन विदित तन सर्वत्र हैं ॥१६॥
जो गुणों के समुदाय एवं पुण्य कमलों के रवि ।
कामना के कल्पतरु अर कामगज को केशरी ॥
देवेन्द्र जिनको नमें वे जयवन्त श्री जिनराजजी ।
हे कर्मतरु के बीजनाशक तजा भव तरु आपने ॥१७॥
दुष्कर्म के यमराज जीता काम शर को आपने ।
राजेन्द्र चरणों में नमें रिपु क्रोध जीता आपने ॥

(५१)

सर्वविद्याप्रकाशक भवताप नाशक आप हो ।
श्रीपद्म जिन जयवंत जिनको सदा विद्वद्जन नमें ॥१८॥
पद्मपत्रों सम नयन दुष्कर्म से जो पार हैं ।
दक्ष हैं विज्ञान में अर यक्षगण जिनको नमें ॥
बुधजनों के गुरु एवं मुक्ति जिनकी विदित है ।
कामनाशक पद्मप्रभजिन जगत में जयवंत हैं ॥१९॥
मदनगज को वज्रधर पर मदन सम सौन्दर्य है ।
मुनिगण नमें नित चरण में यमराज नाशक शौर्य है ॥
पापवन को अनल जिनकी कीर्ति दशदिश व्याप्त है ।
जगतपति जिन पद्मप्रभ नित जगत में जयवंत हैं ॥१००॥

(५२)

(दोहा)

निश्चय से निज में रहें नित्य सिद्ध भगवान ।
तीन लोक चूडामणी यह व्यवहार बखान ॥१०१॥

(वीर)

देहमुक्त लोकाग्र शिखर पर रहे नित्य अन्तर्यामी ।
अष्ट कर्म तो नष्ट किये पर मुक्ति सुन्दरी के स्वामी ॥
सर्व दोष से मुक्त हुए पर सर्वसिद्धि के हैं दातार ।
सर्वसिद्धि की प्राप्ति हेतु मैं करूँ वन्दना बारंबार ॥१०२॥

(दोहा)

जो स्वरूप में थिर रहे शुद्ध अष्ट गुणवान ।
नष्ट किये विधि अष्ट जिन नमों सिद्ध भगवान ॥१०३॥

(५३)

(हरिगीत)

अकिंचनता के धनी परवीण पंचाचार में।
अर जितकषायी निपुणबुद्धि हैं समाधि योग में॥
ज्ञानबल से बताते जो पंच अस्तिकाय हम।
उन्हें पूजें भवदुखों से मुक्त होने के लिए॥२३॥^१

(हरिगीत)

सब इन्द्रियों के सहारे से रहित आकुलता रहित।
स्वहित में नित हैं निरत मैत्री दया दम के धनी॥
मुक्ति के जो हेतु शम, दम, नियम के आवास जो।
उन चन्द्रकीर्ति महामुनि का हृदय वंदन योग्य है॥१०४॥

१. विषापहार स्तोत्र

(५४)

(अडिल्ल)

आत्मरमणतारूप चरण ही शील है।
निश्चय का यह कथन शील शिवमूल है॥
शुभाचरण मय चरण परम्परा हेतु है।
सूरिवचन यह सदा धर्म का मूल है॥१०७॥

परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार

(हरिगीत)

कामगज के कुंभथल का किया मर्दन जिन्होंने।
विकसित करें जो शिष्यगण के हृदयपंकज नित्य ही॥
परम संयम और सम्यक्बोध की हैं मूर्ति जो।
हो नमन बारम्बार ऐसे सूरि माधवसेन को॥१०८॥

(५६)

(दोहा)

वंदे बारम्बार हम भव्यकमल के सूर्य।
उपदेशक तत्त्वार्थ के उपाध्याय वैडूर्य॥१०५॥
भव सुख से जो विमुख हैं सर्व संग से मुक्त।
उनका मन अभिवंद्य है जो निज में अनुरक्त॥१०६॥

(हरिगीत)

कोठार के भीतर पड़े ज्यों बीज उग सकते नहीं।
बस उसतरह चारित्र बिन दृग-ज्ञान फल सकते नहीं॥
असुर मानव देव भी श्रुति करें जिस चारित्र की।
मैं करूँ वंदन नित्य बारंबार उस चारित्र को॥१२४॥^१

१. मार्गप्रकाश में कहे गये श्लोक का पद्यानुवाद

(५५)

सम्पूर्ण विषयों के ग्रहण की भावना से मुक्त हों।
निज द्रव्य गुण पर्याय में जो हो गये अनुरक्त हों॥
छोड़कर सब विभावों को नित्य निज में ही रमें।
अति शीघ्र ही वे भव्य मुक्तीरमा की प्राप्ति करें॥१०९॥

(रोला)

अबतक जो भी हुए सिद्ध या आगे होंगे।
महिमा जानो एकमात्र सब भेदज्ञान की॥
और जीव जो भटक रहे हैं भवसागर में।
भेदज्ञान के ही अभाव से भटक रहे हैं॥१२५॥^१

१. समयसार, कलश १३१

(५७)

(रोला)
 इसप्रकार की थिति में मुनिवर भेदज्ञान से ।
 पापपंक को धोकर समतारूपी जल से ॥
 ज्ञानरूप होने से आतम मोहमुक्त हो ।
 शोभित होता समयसार की कैसी महिमा ॥११०॥

(हरिगीत)
 क्या लाभ है ऐसे अनल्प विकल्पों के जाल से ।
 बस एक ही है बात यह परमार्थ का अनुभव करो ॥
 क्योंकि निजरसभरित परमानन्द के आधार से ।
 कुछ भी नहीं है अधिक सुन लो इस समय के सार से ॥२६॥^१

१. समयसार, कलश २४४

(५८)

(दोहा)
 तीव्र मोहवश जीव जो किये अशुभतम कृत्य ।
 उनका कर प्रतिक्रमण मैं रहूँ आतम में नित्य ॥१११॥

(हरिगीत)
 साधित अराधित राध अर संसिद्धि सिद्धि एक है ।
 बस राध से जो रहित है वह आतमा अपराध है ॥२७॥^१
 जो सापराधी निरन्तर वे कर्मबंधन कर रहे ।
 जो निरपराधी वे कभी भी कर्मबंधन ना करें ॥
 अशुद्ध जाने आतमा को सापराधी जन सदा ।
 शुद्धात्मसेवी निरपराधी शान्ति सेवें सर्वदा ॥२८॥^२

१. समयसार, गाथा ३०४ २. समयसार, कलश १८७

(५९)

परमात्मा के ध्यान की संभावना से रहित जो ।
 संसार पीड़ित अज्ञान वे सापराधी जीव हैं ॥
 अखण्ड अर अद्वैत चेतनभाव से संयुक्त जो ।
 निपुण हैं संन्यास में वे निरपराधी जीव हैं ॥११२॥
 रे स्वयं से उत्पन्न परमानन्द के पीयूष से ।
 रे भरा है जो लबालब ज्ञायकस्वभावी आतमा ॥
 उसे शम जल से नहाओ प्रशम भक्तिपूर्वक ।
 सोचो जरा क्या लाभ है इस व्यर्थ के आलाप से ॥११३॥

(रोला)
 जन्म-मरण के जनक सर्व दोषों को तजकर ।
 अनुपम सहजानन्दज्ञानदर्शनवीरजमय ॥

(६०)

आतम में थित होकर समताजल समूह से
 कर कलिमलक्षय जीव जगत के साक्षी होते ॥११४॥

(मनहरण कवित्त)
 उतसर्ग और अपवाद के विभेद द्वारा ।
 भिन्न-भिन्न भूमिका में व्याप्त जो चरित्र है ॥
 पुराणपुरुषों के द्वारा सादर है सेवित जो ।
 उसे प्राप्त कर संत हुए जो पवित्र हैं ॥
 चित्सामान्य और चैतन्यविशेष रूप ।
 जिसका प्रकाश ऐसे निज आत्मद्रव्य में ॥
 क्रमशः पर से पूर्णतः निवृत्ति करके ।
 सभी ओर से सदा वास करो निज में ॥२९॥^१

१. प्रवचनसार, कलश १५

(६१)

(हरिगीत)

जो मुक्त सब संकल्प शुध निजतत्त्व में अनुरक्त हों ।
तप मग्न जिनका चित्त नित स्वाध्याय में जो मत्त हों ॥
धन्य हैं जो सन्त गुणमणि युक्त विषय विरक्त हों ।
वे मुक्तिरूपी सुन्दरी के परम वल्लभ क्यों न हों ॥११५॥

(दोहा)

शल्य रहित परमात्म में तीन शल्य को छोड़ ।
स्थित रह शुद्धात्म को भावें पंडित लोग ॥११६॥

(कुण्डलिया)

अरे कषायों से रंगा भव का हेतु अजोड़ ।
कामबाण की आग से दग्ध चित्त को छोड़ ॥

(६२)

(रोला)

अरे इन्द्रियों से अतीत अन्तर्मुख निष्क्रिय ।
ध्यान-ध्येय के जल्पजाल से पार ध्यान जो ।
अरे विकल्पातीत आतमा की अनुभूति ।
ही है शुक्लध्यान योगिजन ऐसा कहते ॥
सदा प्रगट कल्याणरूप परमात्मतत्त्व में ।
ध्यानावलि है कभी कहे न परमशुद्धनय ॥
ऐसा तो व्यवहारमार्ग में ही कहते हैं ।
हे जिनवर यह तो सब अद्भुत इन्द्रजाल है ॥११९॥
ज्ञानतत्त्व का आभूषण परमात्मतत्त्व यह ।
अरे विकल्पों के समूह से सदा मुक्त है ॥

(६४)

दग्ध चित्त को छोड़ भाग्यवश जो न प्राप्त है ।
ऐसा सुख जो निज आतम में सदा व्याप्त है ॥
निजस्वभाव में नियत आत्मरस माँहि पगा है ।
उसे भजो जो नाँहि कषायों माँहि रंगा है ॥११७॥

(हरिगीत)

सद्ज्ञानमय शुद्धात्मा पर है न कोई आवरण ।
त्रिगुप्तिधारी मुनिवरों का परम निर्मल आचरण ॥
मन-वचन-तन की विकृति को छोड़कर हे भव्यजन !
शुद्धात्मा की भावना से परम गुप्ती को भजो ॥११८॥

(६३)

नय समूहगत यह प्रपंच न आत्मतत्त्व में ।
तब ध्यानावलि कैसे आई कहो जिनेश्वर ॥१२०॥

(दोहा)

पहले कभी न भायी जो भवावर्त के माँहि ।
भवाभाव के लिए अब मैं भाता हूँ ताहि ॥३०॥^१

(हरिगीत)

संसार सागर में मग्न इस आत्मघाती जीव ने ।
रे मात्र कहने को धर्म की वार्ता भव-भव सुनी ॥
धारण किया चारित्र किन्तु खेद है इस जीव ने ।
ज्ञायकस्वभावी आत्मा की बात भी न कभी सुनी ॥१२१॥

१. आत्मानुशासन, श्लोक २३८

(६५)

(दोहा)

जानकार निजतत्त्व के तज विभाव व्यवहार ।
आत्मज्ञान श्रद्धानमय धरें विमल आचार ॥१२२॥

(हरिगीत)

प्रतिक्रमण अर प्रतिसरण परिहार निवृत्ति धारणा ।
निन्दा गरहा और शुद्धि अष्टविध विषकुंभ हैं ॥३१॥^१

(रोला)

प्रतिक्रमण भी अरे जहाँ विष-जहर कहा हो ।
अमृत कैसे कहें वहाँ अप्रतिक्रमण को ॥

अरे प्रमादी लोग अधोऽधः क्यों जाते हैं ?

इस प्रमाद को त्याग ऊर्ध्व में क्यों नहीं जाते ? ॥३२॥^२

१. समयसार, गाथा ३०६

२. समयसार, श्लोक १८९

(६६)

निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार

(वसंततिलका)

अरे जिन्हें प्रतिक्रमण ही नित्य वर्ते ।

अणुमात्र अप्रतिक्रमण जिनके नहीं है ॥

जो सकल संयम भूषण नित्य धारें ।

उन वीरनन्दि मुनि को नित ही नमें हम ॥१२६॥

(हरिगीत)

परभाव को पर जानकर परित्याग उनका जब करे ।

तब त्याग हो बस इसलिए ही ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३३॥^१

१. समयसार, गाथा ३४

(६८)

(हरिगीत)

रे ध्यान-ध्येय विकल्प भी सब कल्पना में रम्य हैं ।

इक आत्मा के ध्यान बिन सब भाव भव के मूल हैं ॥

यह जानकर शुध सहज परमानन्द अमृत बाढ में ।

डुबकी लगाकर सन्तजन हों मगन परमानन्द में ॥१२३॥

चित्तमंदिर में सदा दीपक जले शुक्लध्यान का ।

उस योगि को शुद्धात्मा प्रत्यक्ष होता है सदा ॥१२४॥

(दोहा)

निर्यापक आचार्य के सुनकर वचन सयुक्ति ।

जिनका चित्त चारित्र घर वन्दूँ उनको नित्य ॥१२५॥

(६७)

(रोला)

नष्ट हो गया मोहभाव जिसका ऐसा मैं ।

करके प्रत्याख्यान भाविकर्मों का अब तो ॥

वर्त रहा हूँ अरे निरन्तर स्वयं स्वयं के ।

शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में ॥३४॥^१

(हरिगीत)

जो ज्ञानि छोड़े कर्म अर नोकर्म के समुदाय को ।

उस ज्ञानमूर्ति विज्ञजन को सदा प्रत्याख्यान है ॥

और सत् चारित्र भी है क्योंकि नाशे पाप सब ।

वन्दन करूँ नित भवदुखों से मुक्त होनेके लिए ॥१२७॥

१. समयसार, गाथा २२८

(६९)

(रोला)

केवलदर्शनज्ञानसौख्यमय परमतेज वह ।

उसे देखते किसे न देखा कहना मुश्किल ॥

उसे जानते किसे न जाना कहना मुश्किल ।

उसे सुना तो किसे न सुना कहना मुश्किल ॥३५॥^१

(अडिल्ल)

मुनिराजों के हृदयकमल का हंस जो ।

निर्मल जिसकी दृष्टि ज्ञान की मूर्ति जो ॥

सहज परम चैतन्य शक्तिमय जानिये ।

सुखमय परमात्मा सदा जयवंत है ॥१२८॥

१. पद्मनन्दिपंचविंशति, एकत्वसप्तति अधिकार, छन्द २०

(७०)

प्राप्ति हेतु नित लगा हुआ है निज आतम में ।

अमृतभोजी देव लगे क्यों अन्य असन में ॥१३०॥

अन्य द्रव्य के कारण से उत्पन्न नहीं जो ।

निज आतम के आश्रय से जो पैदा होता ॥

उस अमृतमय सुख को पी जो सुकृत छोड़े ।

प्रगटरूप से वे चित् चिन्तामणि को पावें ॥१३१॥

(दोहा)

गुरुचरणों की भक्ति से जाने निज माहात्म्य ।

ऐसा बुध कैसे कहे मेरा यह परद्रव्य ॥१३२॥

(७२)

(हरिगीत)

जो गृहीत को छोड़े नहीं पर न ग्रहे अग्राह्य को ।

जाने सभी को मैं वही है स्वानुभूति गम्य जो ॥३६॥^१

आतमा में आतमा को जानता है देखता ।

बस एक पंचमभाव है जो नंतगुणमय आतमा ॥

उस आतमा ने आजतक छोड़ा न पंचमभाव को ।

और जो न ग्रहण करता पुद्गलिक परभाव को ॥१२९॥

(रोला)

अन्य द्रव्य के आग्रह से जो पैदा होता ।

उस तन को तज पूर्ण सहज ज्ञानात्मक सुख की ॥

१. समाधिशातक, छन्द २०

(७१)

(हरिगीत)

जो मूल शिव साम्राज्य परमानन्दमय चिद्रूप है ।

बस ग्रहण करना योग्य है इस एक अनुपम भाव को ॥

इसलिए हे मित्र सुन मेरे वचन के सार को ।

इसमें रमो अति उग्र हो आनन्द अपरम्पार हो ॥१३३॥

(रोला)

सभी शुभाशुभभावों के निषेध होने से ।

अशरण होंगे नहीं रमेंगे निज स्वभाव में ॥

अरे मुनीश्वर तो निशदिन निज में ही रहते ।

निजानन्द के परमामृत में ही नित रमते ॥३७॥^१

१. समयसार, कलश १०४

(७३)

(हरिगीत)

मन-वचन-तन व इंद्रियों की वासना का दमक मैं।
भव उदधि संभव मोह जलचर और कंचन कामिनी॥
की चाह को मैं ध्यानबल से चाहता हूँ छोड़ना।
निज आतमा में आतमा को चाहता हूँ जोड़ना॥१३४॥

(दोहा)

वही एक मेरे लिए परमज्ञान चारित्र।
पावन दर्शन तप वही निर्मल परम पवित्र॥३८॥^१
सत्पुरुषों के लिए वह एकमात्र संयोग।
मंगल उत्तम शरण अर नमस्कार के योग्य॥३९॥^२

१. पद्मनादिपंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, श्लोक ३९
२. वही, श्लोक ४०

(७४)

(भुजंगप्रयात)

किया नष्ट जिसने है अघतिमिर को,
रहता सदा जो सत्पुरुष के हृदय में।
कभी विज्ञान को निर्मल अनिर्मल,
निर्मल-अनिर्मल देता दिखाई॥
जो नष्ट करता है अघ तिमिर को,
वह ज्ञानदीपक भगवान आतम।
अज्ञानियों के लिए तो गहन है,
पर ज्ञानियों को देता दिखाई॥१३६॥

(दोहा)

स्वयं करे भोगे स्वयं यह आतम जग माँहि।
स्वयं रुले संसार में स्वयं मुक्त हो जाँहि॥

(७६)

योगी जो अप्रमत्त हैं उन्हें एक आचार।
स्वाध्याय भी है वही आवश्यक व्यवहार॥४०॥^१

(हरिगीत)

इक आतमा ही बस रहा मम सहज दर्शन-ज्ञान में।
संवर में शुध उपयोग में चारित्र प्रत्याख्यान में॥
दुष्कर्म अर सत्कर्म हूँ इन सब कर्म के संन्यास में।
मुक्ति पाने के लिए अन कोई साधन है नहीं॥१३५॥

१. पद्मनादिपंचविंशतिका, एकत्वसप्तति अधिकार, श्लोक ४१

(७५)

(वीर)

जनम-मरण के सुख-दुख तुमने स्वयं अकेले भोगे हैं।
मात-पिता सुत-सुता बन्धुजन कोई साथ न देते हैं॥
यह सब टोली धूर्तजनों की अपने-अपने स्वारथ से।
लगी हुई है साथ तुम्हारे पर न कोई तुम्हारे हैं॥४१॥^१
जीव अकेला कर्म घनेरे उनने इसको घेरा है।
तीव्र मोहवश इसने निज से अपना मुखड़ा फेरा है॥
जनम-मरण के दुःख अनंते इसने अबतक प्राप्त किये।
गुरु प्रसाद से तत्त्व प्राप्त कर निज में किया वसेरा है॥१३७॥

१. यशस्तिलकचंपूकाव्य, द्वितीय अधिकार, श्लोक ११९

(७७)

सदा शुद्ध शाश्वत परमात्म मेरा तत्त्व अनेरा है ।
सहज परम चिद् चिन्तामणि चैतन्य गुणों का बसेरा है ॥
अरे कथंचित् एक दिव्य निज दर्शन-ज्ञान भरेला है ।
अन्य भाव जो बहु प्रकार के उनमें कोई न मेरा है ॥१३८॥

(दोहा)

चरण द्रव्य अनुसार हो द्रव्य चरण अनुसार ।
शिवपथगामी बनो तुम दोनों के अनुसार ॥१४२॥^१
जिनका चित्त आसक्त है निज आत्म के माँहि ।
सावधानी संयम विषैँ उन्हें मरणभय नाँहि ॥१३९॥

१. प्रवचनसार, श्लोक १२

(७)

जो योगियों को महादुर्लभ भाव अपरंपार है ।
त्रैलोक्यजन अर मुनिवरों का अनोखालंकार है ॥
सुखोदधि के ज्वार को जो पूर्णिमा का चन्द्र है ।
दीक्षांगना की सखी यह समता सदा जयवंत है ॥१४१॥
अरे समतासुन्दरी के कर्ण का भूषण कहा ।
और दीक्षा सुन्दरी की जवानी का हेतु जो ॥
अरे प्रत्याख्यान वह जिनदेव ने जैसा कहा ।
निर्वाण सुख दातार वह तो सदा ही जयवंत है ॥१४२॥

(रोला)

भाविकाल के भावों से तो मैं निवृत्त हूँ ।
इसप्रकार के भावों को तुम नित प्रति भावो ॥

(८)

(रोला)

हे भाई ! तुम महासबल तज कर प्रमाद अब ।
समतारूपी कुलदेवी को याद करो तुम ॥
अज्ञ सचिव युत मोह शत्रु का नाशक है जो ।
ऐसे सम्यग्ज्ञान चक्र को ग्रहण करो तुम ॥४३॥^१

(हरिगीत)

मुक्त्यांगना का भ्रमर अर जो मोक्षसुख का मूल है ।
दुर्भावनात्मविनाशक दिनकरप्रभा समतूल है ॥
संयमीजन सदा संमत रहें समताभाव से ।
मैं भाऊँ समताभाव को अत्यन्त भक्तिभाव से ॥१४०॥

१. अमृताशीति, श्लोक २१

(७९)

निज स्वरूप जो सुख निधान उसको हे भाई !
यदि छूटना कर्मफलों से प्रतिदिन भावो ॥१४३॥
परमतत्त्व तो अरे भयंकर भव सागर की ।
नौका है हूँ यह बात कही है परमेश्वर ने ॥
इसीलिए तो मैं भाता हूँ परमतत्त्व को ।
अरे निरन्तर अन्तरतम से भक्तिभाव से ॥१४४॥
भ्रान्ति नाश से जिनकी मति चैतन्यतत्त्व में ।
निष्ठित है वे संत निरन्तर प्रत्याख्यान में ॥
अन्य मतों में जिनकी निष्ठा वे योगीजन ।
भ्रमे घोर संसार नहीं वे प्रत्याख्यान में ॥१४५॥

(८१)

जो शाश्वत आनंद जगतजन में प्रसिद्ध है ।
 वह रहता है सदा अनूपम सिद्ध पुरुष में ॥
 ऐसी थिति में जड़बुद्धि बुधजन क्यों रे रे ।
 कामबाण से घायल हो उसको ही चाहें ? ॥१४६॥
 अघ वृक्षों की अटवी को वह्नि समान है ।
 ऐसा सत् चारित्र सदा है प्रत्यखान में ॥
 इसीलिए हे भव्य स्वयं की बुद्धि को तू ।
 आत्मतत्त्व में लगा सहज सुख देने वाले ॥१४७॥
 जो सुस्थित है धीमानों के हृदय कमल में ।
 अर जिसने मोहान्धकार का नाश किया है ॥

(८२)

पुण्य-पाप को नाश काम को खिरा दिया है ।
 महल ज्ञान का अरे काम ना शेष रहा है ॥
 पुष्ट गुणों का धाम मोह रजनी का नाशक ।
 तत्त्ववेदिजन नमें उसी को हम भी नमते ॥१५१॥
 मोहभाव से वर्तमान में कर्म किये जो ।
 उन सबका आलोचन करके ही अब मैं तो ॥
 वर्त रहा हूँ अरे निरन्तर स्वयं स्वयं के ।
 शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में ॥१४४॥^१
 किये कराये अनुमोदित पापों का अब तो ।
 आलोचन करता हूँ मैं निष्कपट भाव से ॥

१. समयसार, कलश २२७

(८४)

सहजतत्त्व निज के प्रकाश से ज्योतिष होकर ।
 अरे प्रकाशन मात्र और जयवंत सदा है ॥१४८॥
 सकल दोष से दूर अखण्डित शाश्वत है जो ।
 भवसागर में डूबों को नौका समान है ॥
 संकटरूपी दावानल को जल समान जो ।
 भक्तिभाव से नमस्कार उस सहजतत्त्व को ॥१४९॥
 जिनमुख से है विदित और थित है स्वरूप में ।
 रत्नदीप सा जगमगात है मुनिमन घट में ॥
 मोहकर्म विजयी मुनिवर से नमन योग्य है ।
 उस सुखमंदिर सहजतत्त्व को मेरा वंदन ॥१५०॥

(८३)

अरे पूर्णतः उन्हें छोड़ने का अभिलाषी ।
 धारण करता यह महान व्रत अरे आमरण ॥१४५॥^१

परमालोचन अधिकार

(रोला)

पुण्य-पाप के भाव घोर संसार मूल हैं ।
 बार-बार उन सबका आलोचन करके मैं ॥
 शुद्ध आत्मा का अवलंबन लेकर विधिवत् ।
 द्रव्यकर्म को नाश ज्ञानलक्ष्मी को पाऊँ ॥१५२॥

१. आचार्य समन्तभद्र : रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक १२५

(८५)

(हरिगीत)

मुक्तिरूपी अंगना के समागम के हेतु जो ।
भेद हैं आलोचना के उन्हें जो भवि जानकर ॥
निज आतमा में लीन हो नित आत्मनिष्ठित ही रहें ।
हो नमन बारंबार उनको जो सदा निजरत रहें ॥१५३॥
जो आतमा को स्वयं में अविचलनिलय ही देखता ।
वह आतमा आनन्दमय शिवसंगी सुख भोगता ॥
संयतों से इन्द्र चक्री और विद्याधरों से ।
भी वंद्य गुणभंडार आतमराम को वंदन करूँ ॥१५४॥
जगतजन के मन-वचन से अगोचर जो आतमा ।
वह ज्ञानज्योति पापतम नाशक पुरातन आतमा ॥

(८६)

जो परम संयमिजनों के नित चित्त पंकज में बसे ।
उसकी कथा क्या करें क्या न करें हम नहीं जानते ॥१५५॥
इन्द्रियरव से मुक्त अर अज्ञानियों से दूर है ।
अर नय-अनय से दूर फिर भी योगियों को गम्य है ॥
सदा मंगलमय सदा उत्कृष्ट आतमतत्त्व जो ।
वह पापभावों से रहित चेतन सदा जयवंत है ॥१५६॥
श्रीपरमगुरुओं की कृपा से भव्यजन इस लोक में ।
निज सुख सुधासागर निमज्जित आतमा को जानकर ॥
नित प्राप्त करते सहजसुख निर्भेद दृष्टिवंत हो ।
उस अपूरब तत्त्व को मैं भा रहा अति प्रीति से ॥१५७॥

(८७)

सब ग्रन्थ से निर्ग्रन्थ शुध परभावदल से मुक्त है ।
निर्मोह है निष्पाप है वह परम आतमतत्त्व है ॥
निर्वाणवनिताजन्यसुख को प्राप्त करने के लिए ।
उस तत्त्व को करता नमन नित भावना भी उसी की ॥१५८॥
भिन्न जो निजभाव से उन विभावों को छोड़कर ।
मैं करूँ नित चिन्मात्र निर्मल आतमा की भावना ॥
कर जोड़कर मैं नमन करता मुक्ति मारग को सदा ।
इस दुखमयी भव-उदधि से बस पार पाने के लिए ॥१५९॥
हैं आत्मनिष्ठा परायण जो मूल उनकी मुक्ति का ।
जो सहजवस्थारूप पुण्य-पाप एकाकार है ॥

(८८)

जो शुद्ध है नित शुद्ध एवं स्वरस से भरपूर है ।
जयवंत पंचमभाव वह जो आत्मा का नूर है ॥१६०॥
इस जगतजन की ज्ञानज्योति अरे काल अनादि से ।
रे मोहवश मदमत्त एवं मूढ है निजकार्य में ॥
निर्मोह तो वह ज्ञानज्योति प्राप्त कर शुधभाव को ।
उज्वल करे सब ओर से तब सहजवस्था प्राप्त हो ॥१६१॥
अरे अन्तःशुद्ध शम-दमगुणकमलनी हंस जो ।
आनन्द गुण भरपूर कर्मों से सदा है भिन्न जो ॥
चैतन्यमूर्ति अनूप नित छोड़े न ज्ञानस्वभाव को ।
वह आत्मा न ग्रहे किंचित् किसी भी परभाव को ॥१६२॥

(८९)

अरे निर्मलभाव अमृत उदधि में डुबकी लगा ।
धोये हैं पापकलंक एवं शान्त कोलाहल किया ॥
इन्द्रियों से जन्य अक्षय अलख गुणमय आतमा ।
रे स्वयं अन्तर्ज्योति से तम नाश जगमग हो रहा ॥१६३॥

(रोला)

अरे सहज ही घोर दुःख संसार घोर में ।
प्रतिदिन तपते जीव अनन्ते घोर दुःखों से ॥
किन्तु मुनिजन तो नित समता के प्रसाद से ।
अरे शमामृत हिम की शीतलता पाते हैं ॥१६४॥
रे विभावतन मुक्त जीव तो कभी न पाते ।
क्योंकि उन्होंने सुकृत-दुष्कृत नाश किये हैं ॥

(९०)

अरे जानकर ऐसा जनम-मरण से विरहित ।
मुक्ति प्रदाता शुद्धातम को नमन करूँ मैं ॥१६८॥
यद्यपि आदि-अन्त से विरहित आतमज्योति ।
सत्य और सुमधुर वाणी का विषय नहीं है ॥
फिर भी गुरुवचनों से आतमज्योति प्राप्त कर ।
सम्यग्दृष्टि जीव मुक्तिवधु वल्लभ होते ॥१६९॥
अरे रागतम सहजतेज से नाश किया है ।
मुनिमनगोचर शुद्ध शुद्ध उनके मन बसता ।
विषयी जीवों को दुर्लभ जो सुख समुद्र है ।
शुद्ध ज्ञानमय शुद्धातम जयवंत वर्तता ॥१७०॥

(९२)

इसीलिए तो सुकृत-दुष्कृत कर्मजाल तज ।
अरे जा रहा हूँ मुमुक्षुओं के मारग में ॥१६५॥
(दोहा)
अस्थिर पुद्गलखंध तन तज भवमूरत जान ।
सदा शुद्ध जो ज्ञानतन पाया आतम राम ॥१६६॥
शुध चेतन की भावना रहित शुभाशुभभाव ।
औषधि है भव रोग की वीतरागमय भाव ॥१६७॥

(रोला)

अरे पंचपरिवर्तनवाले भव के कारण ।
विविध विकल्पोंवाले शुभ अर अशुभ कर्म हैं ॥

(९१)

(हरिगीत)
जिनवर कथित आलोचना के भेद सब पहिचान कर ।
भव्य के श्रद्धेय ज्ञायकभाव को भी जानकर ॥
जो भव्य छोड़े सर्वतः परभाव को पर जानकर ।
हो वही वल्लभ परमश्री का परमपद को प्राप्त कर ॥१७१॥

(रोला)

संयमधारी सन्तों को फल मुक्तिमार्ग का ।
जो देती है और स्वयं के आत्मतत्त्व में ॥
नियत आचरण के अनुरूप आचरणवाली ।
वह आलोचन मेरे मन को कामधेनु हो ॥१७२॥

(९३)

तीन लोक के ज्ञायक निर्विकल्प तत्त्व को ।
 जो मुमुक्षुजन जान उसी की सिद्धि के लिए ॥
 शुद्ध शील आचरे रमे निज आतम में नित ।
 सिद्धि प्राप्त कर मुक्तिवधु के स्वामी होते ॥१७३॥
 आत्मतत्त्व में मग्न मुनिजनों के मन में जो ।
 वह विशुद्ध निर्बाध ज्ञानदीपक निज आतम ॥
 मुनिमनतम का नाशक नौका भवसागर की ।
 साधुजनों से वंद्य तत्त्व को वंदन करता ॥१७४॥
 बुद्धिमान होने पर भी क्या कोई तपस्वी ।
 ऐसा कह सकता कि करो तुम नये पाप को ॥

(९४)

अरे शान्तरसरूपी अमृत के सागर को ।
 नित्य उल्लसित करने को तुम पूर्णचन्द्र हो ॥
 मोहतिमिर के नाशक दिनकर भी तो तुम हो ।
 हे जिन निज में लीन सदा जयवंत जगत में ॥१७८॥
 वे जिनेन्द्र जयवन्त परमपद में स्थित जो ।
 जिनने जरा जनम-मरण को जीत लिया है ॥
 अरे पापतम के नाशक ने राग-द्वेष का ।
 निर्मूलन कर पूर्ण मूल से हनन किया है ॥१७९॥

(९६)

अरे खेद आश्चर्य शुद्ध आतम को जाने ।
 फिर भी ऐसा कहे समझ के बाहर है यह ॥१७५॥
 सब तत्त्वों में सहज तत्त्व निज आतम ही है ।
 सदा अनाकुल सतत् सुलभ निज आतम ही है ॥
 परमकला संपन्न प्रगट घर समता का जो ।
 निज महिमारात आत्मतत्त्व जयवंत सदा है ॥१७६॥
 सात तत्त्व में प्रमुख सहज संपूर्ण विमल है ।
 निरावरण शिव विशद नित्य अत्यंत अमल है ॥
 उसे नमन जो अति दूर मुनि-मन-वचनों से ।
 परपंचों से विलग आत्म आनन्द मगन है ॥१७७॥

(९५)

शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त अधिकार

(हरिगीत)

मुनिजनों के चित्त में जो स्वात्मा का निरन्तर ।
 हो रहा है चिन्तवन बस यही प्रायश्चित्त है ॥
 वे सन्त पावें मुक्ति पर जो अन्य-चिन्तामूढ हों ।
 कामार्त्त वे मुनिराज बाँधें पाप क्या आश्चर्य है ? ॥१८०॥
 (रोला)
 कामक्रोध आदिक जितने भी अन्य भाव हैं ।
 उनके क्षय की अथवा अपने ज्ञानभाव की ॥
 प्रबल भावना ही है प्रायश्चित्त कहा है ।
 ज्ञानप्रवाद पूर्व के ज्ञायक संतगणों ने ॥१८१॥

(९७)

अरे हृदय में कामभाव के होने पर भी ।
क्रोधित होकर किसी पुरुष को काम समझकर ॥
जला दिया हो महादेव ने फिर भी विह्वल ।
क्रोधभाव से नहीं हुई है किसकी हानि ? ॥४६॥^१

(वीर)

अरे हस्तगत चक्ररत्न को बाहुबली ने त्याग दिया ।
यदि न होता मान उन्हें तो मुक्तिरमा तत्क्षण वरती ॥
किन्तु मान के कारण ही वे एक बरस तक खड़े रहे ।
इससे होता सिद्ध तनिक सा मान अपरिमित दुख देता ॥४७॥^२

१. आत्मानुशासन, छन्द २१६

२. वही, छन्द २१७

(९८)

अरे देखना सहज नहीं क्रोधादि भयंकर सांपों को ।
क्योंकि वे सब छिपे हुए हैं मायारूपी गतों में ॥
मिथ्यातम है घोर भयंकर डरते रहना ही समुचित ।
यह सब माया की महिमा है बचके रहना ही समुचित ॥४८॥^१

वनचर भय से भाग रही पर उलझी पूँछ लताओं में ।
दैवयोग से चमर गाय वह मुग्ध पूँछ के बालों में ॥
खड़ी रही वह वहीं मार डाला वनचर ने उसे वहीं ।
इसप्रकार की विकट विपत्ति मिलती सभी लोभियों को ॥४९॥^२

१. आत्मानुशासन, छन्द २२१

२. वही, छन्द २२३

(९९)

(सोरठा)

क्षमाभाव से क्रोध, मान मार्दव भाव से ।
जीतो माया-लोभ आर्जव एवं शौच से ॥१८२॥

(हरिगीत)

शुद्धात्मा के ज्ञान की संभावना जिस संत में ।
आत्मरत उस सन्त को तो नित्य प्रायश्चित्त है ॥
धो दिये सब पाप अर निज में रमे जो संत नित ।
मैं नमूँ उनको उन गुणों को प्राप्त करने के लिए ॥१८३॥

(दोहा)

अनशनादि तप चरणमय और ज्ञान से गम्य ।
अघक्षयकारण तत्त्वनिज सहजशुद्धचैतन्य ॥१८४॥

(१००)

(रोला)

अरे प्रायश्चित्त उत्तम पुरुषों को जो होता ।
धर्मध्यानमय शुक्लध्यानमय चिन्तन है वह ॥
कर्मान्धकार का नाशक यह सद्बोध तेज है ।
निर्विकार अपनी महिमा में लीन सदा है ॥१८५॥

(हरिगीत)

आत्म की उपलब्धि होती आत्मा के ज्ञान से ।
मुनिजनों के करणरूपी घोरतम को नाशकर ॥
कर्मवन उद्भव भवानल नाश करने के लिए ।
वह ज्ञानज्योति सतत् शमजलधार को है छोड़ती ॥१८६॥

(१०१)

(भुजंगप्रयात)

जिनशास्त्ररूपी अमृत उदधि से ।
बाहर हुई संयम रत्नमाला ॥
मुक्तिवधू वल्लभ तत्त्वज्ञानी ।
के कण्ठ की वह शोभा बनी है ॥१८७॥
भवरूप पादप जड़ का विनाशक ।
मुनीराज केचित कमल में रहे नित ॥
अर मुक्तिकांतारतिजन्य सुख का ।
जो मूल आतम उसको नमन हो ॥१८८॥
रे रे अनादि संसार से जो
समृद्ध कर्मों का वन भयंकर ।

(१०२)

(हरिगीत)

जो भव्य भावें सहज सम्यक् भाव से परमात्मा ।
ज्ञानात्मक उस परम संयमवंत को आनन्दमय ॥
शिवसुन्दरी के सुख का कारण परमपरमात्मा ।
के लक्ष्य से सद्भावमय शुधनियम होता नियम से ॥१९१॥
जो अनवरत अद्वैत चेतन निर्विकारी है सदा ।
उस आत्म को नय की तरंगें स्फुरित होती ही नहीं ॥
विकल्पों से पार एक अभेद जो शुद्धात्मा ।
हो नमन, वंदन, स्तवन अर भावना हो भव्यतम ॥१९२॥
यह ध्यान है यह ध्येय है और यह ध्याता अरे ।
यह ध्यान का फल इसतरह के विकल्पों के जाल से ॥

(१०४)

उसे भस्म करने में है सबल जो
अर मोक्षलक्ष्मी की भेंट है जो ॥
शमसुखमयी चैतन्य अमृत
आनन्दधारा से जो लबालब ।
ऐसा जो तप है उसे संतगण सब
प्रायश्चित कहते हैं निरन्तर ॥१८९॥

(रोला)

परमकला युत शुद्ध एक आनन्दमूर्ति है ।
तमनाशक जो नित्यज्योति आद्यन्त शून्य है ॥
उस आतम को जो भविजन अविचल मनवाला ।
ध्यावे तो वह शीघ्र मोक्ष पदवी को पाता ॥१९०॥

(१०३)

जो मुक्त है श्रद्धेय है अर ध्येय एवं ध्यान है ।
उस परम आतमतत्त्व को मम नमन बारंबार है ॥१९३॥
त्रिविध योगों में परायण योगियों को कदाचित् ।
हो भेद की उलझन अरे बहु विकल्पों का जाल हो ॥
उन योगियों की मुक्ति होगी या नहीं कैसे कहें ।
कौन जाने क्या कहे ह्व यह समझ में आता नहीं ॥१९४॥
रे सभी कारज कायकृत मन के विकल्प अनल्प जो ।
अर जल्पवाणी के सभी को छोड़ने के हेतु से ॥
निज आत्मा के ध्यान से जो स्वात्मनिष्ठापरायण ।
हे भव्यजन उन संयमी के सतत् कायोत्सर्ग है ॥१९५॥

(१०५)

मोहतम से मुक्त आतमतेज से अभिषिक्त है ।
दृष्टि से परिपूर्ण सुखमय सहज आतमतत्त्व है ॥
संसार में परिताप की परिकल्पना से मुक्त है ।
अरे ज्योतिर्मान निज परमात्मा जयवंत है ॥१९६॥
संसारसुख अति अल्प केवल कल्पना में रम्य है ।
मैं छोड़ता हूँ उसे सम्यक् रीति आतमशक्ति से ॥
मैं चेतता हूँ सर्वदा चैतन्य के सद्ज्ञान में ।
स्फुरित हूँ मैं परमसुखमय आतमा के ध्यान में ॥१९७॥
समाधि की है विषय मेरे हृदय में स्फुरित ।
स्वातम गुणों की संपदा को एक क्षण जाना नहीं ॥

(१०६)

निर्विकल्पक समाधि में नित रहें जो आतमा ।
उस निर्विकल्पक आतमा को नमन करता हूँ सदा ॥२०१॥
विपिन शून्य प्रदेश में गहरी गुफा के वास से ।
इन्द्रियों के रोध अथवा तीर्थ के आवास से ॥
पठन-पाठन होम से जपजाप अथवा ध्यान से ।
है नहीं सिद्धि खोजलो पथ अन्य गुरु के योग से ॥५०॥^१
अनशनादि तपस्या समता रहित मुनिजनों की ।
निष्फल कही है इसलिए गंभीरता से सोचकर ॥
और समताभाव का मंदिर निजातमराम जो ।
उस ही निराकुलतत्त्व को भज लो निराकुलभाव से ॥२०२॥

१. अमृताशीति, श्लोक ५९

(१०८)

त्रैलोक्य वैभव विनाशक दुष्कर्म की गुणशक्ति के ।
निमित्त से रे हाथ मैं संसार में मारा गया ॥१९८॥

(दोहा)

सांसारिक विषवृक्षफल दुख के कारण जान ।
आतम से उत्पन्न सुख भोगूँ मैं भगवान ॥१९९॥

परमसमाधि अधिकार

(हरिगीत)

समाधि बल से मुमुक्षु उत्तमजनों के हृदय में ।
स्फुरित समताभावमय निज आतमा की संपदा ॥
जबतक न अनुभव करें हम तबतक हमारे योग्य जो ।
निज अनुभवन का कार्य है वह हम नहीं हैं कर रहे ॥२००॥

(१०७)

संसारभय के हेतु जो सावद्य उनको छोड़कर ।
मनवचनतन की विकृति से पूर्णतः मुख मोड़कर ॥
अरे अन्तर्शुद्धि से सद्ज्ञानमय शुद्धात्मा ।
को जानकर समभावमयचारित्र को धारण करें ॥२०३॥
जिन मुनिवरों का चित्त नित त्रस-थावरों के त्रास से ।
मुक्त हो सम्पूर्णतः अन्तिम दशा को प्राप्त हो ॥
उन मुनिवरों को नमन करता भावना भाता सदा ।
स्तवन करता हूँ निरन्तर मुक्ति पाने के लिए ॥२०४॥

(दोहा)

कोई वर्ते द्वैत में अर कोई अद्वैत ।
द्वैताद्वैत विमुक्तमग हम वर्ते समवेत ॥२०५॥

(१०९)

कोई चाहे द्वैत को अर कोई अद्वैत ।
द्वैताद्वैत विमुक्त जिय में वंदूँ समवेत ॥२०६॥

(सोरठा)

थिर रह सुख के हेतु अज अविनाशी आत्म में ।
भाऊँ बारंबार निज को निज से निरन्तर ॥२०७॥

(हरिगीत)

संसार के जो हेतु हैं इन विकल्पों के जाल से ।
क्या लाभ है हम जा रहे नयविकल्पों के पार अब ॥
नयविकल्पातीत सुखमय अगम आतमराम को ।
वन्दन करूँ कर जोड़ भवभय नाश करने के लिए ॥२०८॥

(११०)

सद्दृष्टियों को सदागोचर आत्ममहिमालीन जो ।
जयवंत है भव अंतकारक अनघ आतमराम वह ॥२११॥
शुद्ध सम्यग्दृष्टिजन जाने कि संयमवंत के ।
तप-नियम-संयम-चरित में यदि आतमा ही मुख्य है ॥
तो सहज समताभाव निश्चित जानिये हे भव्यजन ।
भावितीर्थकर श्रमण को भवभयों से मुक्त जो ॥२१२॥

(रोला)

किया पापतम नाश ज्ञानज्योति से जिसने ।

परमसुखामृतपूर आतमा निकट जहाँ है ॥

राग-द्वेष न समर्थ उसे विकृत करने में ।

उस समरसमय आतम में है विधि-निषेध क्या ॥२१३॥

(११२)

अच्छे बुरे निजकार्य से सुख-दुःख हों संसार में ।
पर आतमा में हैं नहीं ये शुभाशुभ परिणाम सब ॥
क्योंकि आतमराम तो इनसे सदा व्यतिरिक्त है ।
स्तुति करूँ मैं उसी भव से भिन्न आतमराम की ॥२०९॥

प्रगट अपने तेज से अति प्रबल तिमिर समूह को ।
दूर कर क्षणमात्र में ही पापसेना की ध्वजा ॥
हरण कर ली जिस महाशय प्रबल आतमराम ने ।
जयवंत है वह जगत में चित्त्वमत्कारी आतमा ॥२१०॥

गणधरों के मनकमल थित प्रगट शुध एकान्ततः ।
भवकारणों से मुक्त चित् सामान्य में है रत सदा ॥

(१११)

(सोरठा)

जो मुनि छोड़े नित्य आर्त्त-रौद्र ये ध्यान दो ।

सामायिकव्रत नित्य उनको जिनशासन कथित ॥२१४॥

(हरिगीत)

संसार के जो मूल ऐसे पुण्य एवं पाप को ।

छोड़ नित्यानन्दमय चैतन्य सहजस्वभाव को ॥

प्राप्त कर जो रमण करते आत्मा में निरंतर ।

अरे त्रिभुवनपूज्य वे जिनदेवपद को प्राप्त हों ॥२१५॥

पुनपापरूपी गहनवन दाहक भयंकर अग्नि जो ।

अर मोहतमनाशक प्रबल अति तेज मुक्तीमूल जो ॥

(११३)

निरुपाधि सुख आनंददा भवध्वंस करने में निपुण ।
 स्वयंभू जो ज्ञान उसको नित्य करता मैं नमन ॥२१६॥
 आकुलित होकर जी रहा जिय अघों के समुदाय से ।
 भववधू का पति बनकर काम सुख अभिलाष से ॥
 भव्यत्व द्वारा मुक्ति सुख वह प्राप्त करता है कभी ।
 अनूपम सिद्धत्वसुख से फिर चलित होता नहीं ॥२१७॥
 मोहांध जीवों को सुलभ पर आत्मनिष्ठ समाधिरत ।
 जो जीव हैं उन सभी को है महादुर्लभ भाव जो ॥
 वह भवस्त्री उत्पन्न सुख-दुखश्रेणिकारक रूप है ।
 मैं छोड़ता उस भाव को जो नोकषायस्वरूप है ॥२१८॥

(११४)

इस अनघ आनन्दमय निजतत्त्व के अभ्यास से ।
 है बुद्धि निर्मल हुई जिनकी धर्म शुक्लध्यान से ॥
 मन वचन मग से दूर हैं जो वे सुखी शुद्धात्मा ।
 उन रतनत्रय के साधकों को प्राप्त हो निज आत्मा ॥२१९॥

परमभक्ति अधिकार

(हरिगीत)

संसारभयहर ज्ञानदर्शनचरण की जो संयमी ।
 श्रावक करें भव अंतकारक अतुल भक्ती निरंतर ॥
 वे काम क्रोधादिक अखिल अघ मुक्त मानस भक्तगण ।
 ही लोक में जिनभक्त सहृदय और सच्चे भक्त हैं ॥२२०॥

(११५)

(दोहा)

सिद्धवधूधव सिद्धगण नाशक कर्मसमूह ।
 मुक्तिनिलयवासी गुणी वंदन करूँ सदीव ॥२२१॥
 सिद्धभक्ति व्यवहार है जिनमत के अनुसार ।
 नियतभक्ति है रतनत्रय भविजन तारणहार ॥२२२॥
 सब दोषों से दूर जो शुद्धगुणों का धाम ।
 आत्मध्यानफल सिद्धपद सूरि कहें सुखधाम ॥२२३॥

(हरिगीत)

शिववधूसुखखान केवलसंपदा सम्पन्न जो ।
 पापाटवी पावक गुणों की खान हैं जो सिद्धगण ॥
 भवक्लेश सागर पार अर लोकाग्रवासी सभी को ।
 वंदन करूँ मैं नित्य पाऊँ परमपावन आचरण ॥२२४॥

(११६)

ज्ञेयोदधि के पार को जो प्राप्त हैं वे सुख उदधि ।
 शिववधूसुखकमलरवि स्वाधीनसुख के जलनिधि ॥
 आठ कर्मों के विनाशक आठगुणमय गुणगुरु ।
 लोकाग्रवासी सिद्धगण की शरण में मैं नित रहूँ ॥२२५॥
 सुसिद्धिरूपी रम्यरमणी के मधुर रमणीय मुख ।
 कमल के मकरंद के अलि वे सभी जो सिद्धगण ॥
 नरसुगणों की भक्ति के जो योग्य शिवमय श्रेष्ठ हैं ।
 मैं उन सभी को परमभक्ति भाव से करता नमन ॥२२६॥
 शिवहेतु निरुपम सहज दर्शन ज्ञान सम्यक् शीलमय ।
 अविचल त्रिकाली आत्मा में आत्मा को थाप कर ॥
 चिच्चमत्कारी भक्ति द्वारा आपदाओं से रहित ।
 घर में बसें आनंद से शिव रमापति चिरकाल तक ॥२२७॥

(११७)

(दोहा)

निज आतम के यत्न से मनगति का संयोग ।
निज आतम में होय जो वही कहावे योग ॥५१॥^१
निज आतम में आतमा को जोड़े जो योगि ।
योग भक्ति वाला वही मुनिवर निश्चय योगि ॥२२८॥
आत्मलब्धि रूपा मुकति योगभक्ति से होय ।
योगभक्ति सर्वोत्तमा भेदाभावे होय ॥२२९॥
छोड़ दुराग्रह जैन मुनि मुख से निकले तत्त्व ।
में जोड़े निजभाव तो वही भाव है योग ॥२३०॥

१. श्लोक संख्या एवं ग्रंथ का नाम अनुपलब्ध है ।

(११८)

(वीरछन्द)

गुरुदेव की सत्संगति से सुखकर निर्मल धर्म अजोड़ ।
पाकर मैं निर्मोह हुआ हूँ राग-द्वेष परिणति को छोड़ ॥
शुद्धध्यान द्वारा मैं निज को ज्ञानानन्द तत्त्व में जोड़ ।
परमब्रह्म निज परमातम में लीन हो रहा हूँ बेजोड़ ॥२३४॥

(दोहा)

इन्द्रिय लोलुप जो नहीं तत्त्वलोलुपी चित्त ।
उनको परमानन्दमय प्रगटे उत्तम तत्त्व ॥२३५॥
अति अपूर्व आतमजनित सुख का करें प्रयत्न ।
वे यति जीवन्मुक्त हैं अन्य न पावे सत्य ॥२३६॥

(१२०)

(वीरछन्द)

शुद्धपरिणति गुणगुरुओं की अद्भुत अनुपम अति निर्मल ।
तीन लोक में फैल रही है जिनकी अनुपम कीर्ति धवल ॥
इन्द्रमुकुटमणियों से पूजित जिनके पावन चरणाम्बुज ।
उन ऋषभादि परम गुरुओं को वंदन बारंबार सहज ॥२३१॥
ऋषभदेव से महावीर तक इसी मार्ग से मुक्त हुए ।
इसी विधि से योगभक्ति कर शिवरमणी सुख प्राप्त किये ॥२३२॥

(दोहा)

मैं भी शिवसुख के लिए योगभक्ति अपनाऊँ ।
भव भय से हे भव्यजन इसको ही अपनाओ ॥२३३॥

(११९)

(हरिगीत)

अद्वन्द्व में है निष्ठ एवं अनघ जो दिव्यातमा ।
मैं एक उसकी भावना संभावना करता सदा ॥
मैं मुक्ति का चाहक तथा हूँ निष्पृही भवसुखों से ।
है क्या प्रयोजन अब मुझे इन परपदार्थ समूह से ॥२३७॥

(मनहरण)

विलीन मोह-राग-द्वेष मेघ चहुं ओर के,
चेतना के गुणगण कहाँ तक बखानिये ।
अविचल जोत निष्कंप रत्नदीप सम,
विलसत सहजानन्द मय जानिये ॥

(१२१)

नित्य आनंद के प्रशमरस में मगन,
शुद्ध उपयोग का महत्त्व पहिचानिये ।
नित्य ज्ञानतत्त्व में विलीन यह आतमा,
स्वयं धर्मरूप परिणत पहिचानिये ॥५२॥^१

निश्चयपरमावश्यक अधिकार

(रोला)

जो सत् चित् आनंदमयी निज शुद्धात्म में ।
रत होने से अरे स्ववशताजन्य कर्म जो ॥
वह आवश्यक परम करम ही मुक्तिमार्ग है ।
उससे ही मैं निर्विकल्प सुख को पाता हूँ ॥२३८॥

१. प्रवचनसार, कलश ५

(१२२)

मुनि होकर भी अरे अन्यवश संसारी है, दुखमय है ।
और स्ववशजन सुखी मुक्तर बस जिनवर से कुछ कम है ॥२४३॥
अतः एव श्री जिनवर पथ में स्ववश मुनि शोभा पाते ।
और अन्यवश मुनिजन तो बस चमचों सम शोभा पाते ॥२४४॥
अतः मुनिवरो देवलोक के क्लेशों से रति को छोड़ो ।
सुख-ज्ञान पूर नय-अनय दूर निज आतम में निज को जोड़ो ॥२४५॥

(दोहा)

ब्रह्मनिष्ठ मुनिवरो को दृष्टादृष्ट विरुद्ध ।
आत्मकार्य को छोड़ क्या परचिन्ता से सिद्ध ॥५३॥^१

१. ग्रंथ का नाम एवं श्लोक संख्या अनुपलब्ध है ।

(१२४)

निज आतम से भिन्न किसी के वश में न हो ।
स्वहित निरत योगी नित ही स्वाधीन रहे जो ॥
दुरिततिमिरनाशक अमूर्त ही वह योगी है ।
यही निरुक्तिक अर्थ सार्थक कहा गया है ॥२३९॥

(ताटंक)

त्रिभुवन घर में तिमिर पुंज सम मुनिजन का यह घन नव मोह ।
यह अनुपम घर मेरा है - यह याद करें निज तृण घर छोड़ ॥२४०॥
ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ पाप बन दहें पुजें इस भूतल में ।
सत्यधर्म के रक्षामणि मुनि विरहित मिथ्यामल कलि में ॥२४१॥
मतिमानों को अतिप्रिय एवं शत इन्द्रों से अर्चित तप ।
उसको भी पाकर जो मन्मथ वश है कलि से घायल वह ॥२४२॥

(१२३)

(दोहा)

जबतक ईंधन युक्त है अग्नि बढ़े भरपूर ।
जबतक चिन्ता जीव को तबतक भव का पूर ॥२४६॥

(ताटंक)

शुद्धबोधमय मुक्ति सुन्दरी को प्रमोद से प्राप्त करें ।
भवकारण का नाश और सब कर्मावलि का हनन करें ॥
वर विवेक से सदा शिवमयी परवशता से मुक्त हुए ।
वे उदारधी संत शिरोमणि स्ववश सदा जयवन्त रहें ॥२४७॥

(दोहा)

काम विनाशक अवंचक पंचाचारी योग्य ।
मुक्तिमार्ग के हेतु हैं गुरु के वचन मनोज्ञ ॥२४८॥

(१२५)

जिनप्रतिपादित मुक्तिमग इसप्रकार से जान ।
मुक्ति संपदा जो लहे उसको सतत् प्रणाम ॥२४९॥

(रोला)

कनक कामिनी की वांछा का नाश किया हो ।
सर्वश्रेष्ठ है सभी योगियों में जो योगी ॥
काम भील के काम तीर से घायल हम सब ।
हे योगी तुम भववन में हो शरण हमारी ॥२५०॥
अनशनादि तप का फल केवल तन का शोषण ।
अन्य न कोई कार्य सिद्ध होता है उससे ॥
हे स्ववश योगि ! तेरे चरणों के नित चिन्तन से ।
शान्ति पा रहा सफल हो रहा मेरा जीवन ॥२५१॥

(१२६)

समता रस से पूर्ण भरा होने से पावन ।
निजरस के विस्तार पूर से सब अघ धोये ॥
स्ववश हृदय में संस्थित जो पुराण पावन है ।
शुद्धसिद्ध वह तेजराशि जयवंत जीव है ॥२५२॥

(दोहा)

वीतराग सर्वज्ञ अर आत्मवशी गुरुदेव ।
इनमें कुछ अन्तर नहीं हम जड़ माने भेद ॥२५३॥
स्ववश महामुनि अनन्यधी और न कोई अन्य ।
सरव करम से बाह्य जो एकमात्र वे धन्य ॥२५४॥

(१२७)

(सोरठा)

प्रगटें दोष अनंत, यदि मन भटके आत्म से ।
यदि चाहो भव अंत, मगन रहो निज में सदा ॥५४॥^१

(रोला)

अतिशय कारण मुक्ति सुन्दरी के सम सुख का ।
निज आतम में नियत चरण भवदुख का नाशक ॥
जो मुनिवर यह जान अनघ निज समयसार को ।
जाने वे मुनिनाथ पाप अटवी को पावक ॥२५५॥

१. अमृताशीति, श्लोक ६४

(१२८)

(दोहा)

आवश्यक प्रतिदिन करो अघ नाशक शिव मूल ।
वचन अगोचर सुख मिले जीवन में भरपूर ॥२५६॥
निज आतम का चिन्तवन स्ववश साधु के होय ।
इस आवश्यक करम से उनको शिवसुख होय ॥२५७॥

(रोला)

परमातम से भिन्न सभी जिय बहिरातम अर ।
अन्तर आतमरूप कहे हैं दो प्रकार के ॥
देह और आतम में धारे अहंबुद्धि जो ।
वे बहिरातम जीव कहे हैं जिन आगम में ॥५५॥^१

१. मार्गप्रकाश ग्रंथ में उद्धृत श्लोकश्लोक ९०

(१२९)

अन्तरात्मा उत्तम मध्यम जघन कहे हैं ।
 क्षीणमोह जिय उत्तम अन्तर आतम ही है ॥
 अविरत सम्यग्दृष्टि जीव सब जघन कहे हैं ।
 इन दोनों के बीच सभी मध्यम ही जानो ॥५६॥^१
 योगी सदा परम आवश्यक कर्म युक्त हो ।
 भव सुख दुख अटवी से सदा दूर रहता है ॥
 इसीलिए वह आत्मनिष्ठ अन्तर आतम है ।
 स्वात्मतत्त्व से भ्रष्ट आतमा बहिरातम है ॥२५८॥

१. मार्गप्रकाश ग्रंथ में उद्धृत श्लोक

(१३०)

(हरिगीत)
 उठ रहा जिसमें अनन्ते विकल्पों का जाल है ।
 वह वृहद् नयपक्षकक्षा विकट है विकराल है ॥
 उल्लंघन कर उसे बुध अनुभूतिमय निजभाव को ।
 हो प्राप्त अन्तर्बाह्य से समरसी एक स्वभाव को ॥५७॥^१
 संसारभयकर बाह्य-अंतरजल्प तज समरसमयी ।
 चित्तचमत्कारी एक आतम को सदा स्मरण कर ॥
 ज्ञानज्योति से अरे निज आतमा प्रगटित किया ।
 वह क्षीणमोही जीव देखे परमतत्त्व विशेषतः ॥२५९॥

१. समयसार, श्लोक ९०

(१३१)

(वीरछन्द)
 धरम-शुकलध्यान समरस में जो वर्ते वे सन्त महान ।
 उनके चरणकमल की शरणा गहें नित्य हम कर सन्मान ॥
 धरम-शुकल से रहित तुच्छ मुनि कर न सके आतमकल्याण ।
 संसारी बहिरातम हैं वे उन्हें नहीं निज आतमज्ञान ॥२६०॥
 बहिरातम-अन्तरातम के शुद्धातम में उठें विकल्प ।
 यह कुबुद्धियों की परिणति है ये मिथ्या संकल्प-विकल्प ॥
 ये विकल्प भवरमणी को प्रिय इनका है संसार अनन्त ।
 ये सुबुद्धियों को न इष्ट हैं, उनका आया भव का अन्त ॥२६१॥

(१३२)

(रोला)
 दर्शन अर चारित्र मोह का नाश किया है ।
 भवसुखकारक कर्म छोड़ संन्यास लिया है ॥
 मुक्तिमूल मल रहित शील-संयम के धारक ।
 समरस-अमृतसिन्धु चन्द्र को नमन करूँ मैं ॥२६२॥
 मुक्ति सुन्दरी के दोनों अति पुष्ट स्तनों ।
 के आलिंगनजन्य सुखों का अभिलाषी हो ॥
 अरे त्यागकर जिनवाणी को अपने में ही ।
 थित रहकर वह भव्यजीव जग तृणसम निरखे ॥२६३॥

(१३३)

(हरिगीत)

परीवर्तन वाँचना अर पृच्छना अनुप्रेक्षा ।
स्तुति मंगल पूर्वक यह पंचविध स्वाध्याय है ॥५८॥^१
पापमय कलिकाल में जिननाथ के भी मार्ग में ।
मुक्ति होती है नहीं निजध्यान संभव न लगे ॥
तो साधकों को सतत आतमज्ञान करना चाहिए ।
निज त्रिकाली आत्म का श्रद्धान करना चाहिए ॥२६४॥
पशूवत् अल्पज्ञ जनकृत भयों को परित्याग कर ।
शुभाशुभ भववर्धिनी सब वचन रचना त्याग कर ॥

१. श्रीमूलाचार, पंचाचार अधिकार, गाथा २१९

(१३४)

पुण्योदयों से प्राप्त कांचन आदि वैभव लोक में ।
गुप्त रहकर भोगते जन जिस तरह इस लोक में ॥
उस तरह सद्ज्ञान की रक्षा करें धर्मात्मा ।
सब संग त्यागी ज्ञानीजन सद्ज्ञान के आलोक में ॥२६८॥

(वीर छन्द)

जनम-मरण का हेतु परिग्रह अरे पूर्णतः उसको छोड़ ।
हृदय कमल में बुद्धिपूर्वक जगविराग में मन को जोड़ ॥
परमानन्द निराकुल निज में पुरुषारथ से थिर होकर ।
मोह क्षीण होने पर तृणसम हम देखें इस जग की ओर ॥२६९॥

(१३६)

कनक-कामिनि मोह तज सुख-शांति पाने के लिए ।
निज आतमा में जमे मुक्तीधाम जाने के लिए ॥२६५॥
कुशल आत्मप्रवाद में परमात्मज्ञानी मुनीजन ।
पशुजनों कृत भयंकर भय आत्मबल से त्याग कर ॥
सभी लौकिक जल्प तज सुखशांतिदायक आतमा ।
को जानकर पहिचानकर ध्यावें सदा निज आतमा ॥२६६॥
संसारकारक भेद जीवों के अनेक प्रकार हैं ।
भव जन्मदाता कर्म भी जग में अनेक प्रकार हैं ॥
लब्धियाँ भी हैं विविध इस विमल जिनमारगविषे ।
स्वपरमत के साथ में न विवाद करना चाहिए ॥२६७॥

(१३५)

अरे पुराण पुरुष योगीजन निज आतम आराधन से ।
सभी करमरूपी राक्षस के पूरी तरह विराधन से ॥
विष्णु-जिष्णु हुए उन्हीं को जो मुमुक्षु पूरे मन से ।
नित्य नमन करते वे मुनिजन अघ अटवी को पावक हैं ॥२७०॥
कनक-कामिनी गोचर एवं हेयरूप यह मोह छली ।
इसे छोड़कर निर्मल सुख के लिए परम पावन गुरु से ॥
धर्म प्राप्त करके हे आत्मन् निरुपम निर्मल गुणधारी ।
दिव्यज्ञान वाले आतम में तू प्रवेश कर सत्वर ही ॥२७१॥

(१३७)

(हरिगीत)

वस्तु के सत्यार्थ निर्णयरूप सम्यग्ज्ञान है ।
स्व-पर अर्थों का प्रकाशक वह प्रदीप समान है ॥
वह निर्णयात्मक ज्ञान प्रमिति से कथंचित् भिन्न है ।
पर आत्मा से ज्ञानगुण से तो अखण्ड अभिन्न है ॥५९॥^१

(रोला)

बंध-छेद से मुक्त हुआ यह शुद्ध आत्मा,
निजरस से गंभीर धीर परिपूर्ण ज्ञानमय ।
उदित हुआ है अपनी महिमा में महिमामय,
अचल अनाकुल अज अखंड यह ज्ञानदिवाकर ॥६०॥^२

१. महासेनदेव पण्डित द्वारा रचित श्लोक, ग्रंथ संख्या एवं श्लोक संख्या अनुपलब्ध है ।
२. समयसार : आत्मख्याति, छन्द १९२

(१३८)

शुद्धोपयोग अधिकार

(हरिगीत)

सौभाग्यशोभा कामपीड़ा शिवश्री के वदन की ।
बढ़ावें जो केवली वे जानते सम्पूर्ण जग ॥
व्यवहार से परमार्थ से मलक्लेश विरहित केवली ।
देवाधिदेव जिनेश केवल स्वात्मा को जानते ॥२७२॥
अर्थान्तगत है ज्ञान लोकालोक विस्तृत दृष्टि है ।
हैं नष्ट सर्व अनिष्ट एवं इष्ट सब उपलब्ध हैं ॥६१॥^१
जिनवर कहें छद्मस्थ के हो ज्ञान दर्शनपूर्वक ।
पर केवली के साथ हों दोनों सदा यह जानिये ॥६२॥^२

१. प्रवचनसार, गाथा ६१
२. बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा ४४

(१३९)

अज्ञानतम को सूर्यसम सम्पूर्ण जग के अधिपति ।
हे शान्तिसागर वीतरागी अनूपम सर्वज्ञ जिन ॥
संताप और प्रकाश युगपत् सूर्य में हों जिसतरह ।
केवली के ज्ञान-दर्शन साथ हों बस उसतरह ॥२७३॥
सद्बोधरूपी नाव से ज्यों भवोदधि को पारकर ।
शीघ्रता से शिवपुरी में आप पहुँचे नाथवर ॥
में आ रहा हूँ उसी पथ से मुक्त होने के लिए ।
अन्य कोई शरण जग में दिखाई देता नहीं ॥२७४॥
आप केवलभानु जिन इस जगत में जयवंत हैं ।
समरसमयी निर्देह सुखदा शिवप्रिया के कंत हैं ॥

(१४०)

रे शिवप्रिया के मुखकमल पर कांति फैलाते सदा ।
सुख नहीं दे निजप्रिया को है कौन ऐसा जगत में ॥२७५॥
(दोहा)
अरे भ्रमर की भांति तुम, शिवकामिनि लवलीन ।
अद्वितीय आत्मीक सुख, पाया जिन अमलीन ॥२७६॥

(मनहरण कवित्त)

जिसने किये हैं निर्मूल घातिकर्म सब ।
अनंत सुख वीर्य दर्श ज्ञान धारी आत्मा ॥
भूत भावी वर्तमान पर्याय युक्त सब ।
द्रव्य जाने एक ही समय में शुद्धात्मा ॥

(१४१)

मोह का अभाव पररूप परिणमें नहीं ।
 सभी ज्ञेय पीके बैठा ज्ञानमूर्ति आतमा ॥
 पृथक्-पृथक् सब जानते हुए भी ये ।
 सदा मुक्त रहें अरहंत परमातमा ॥६३॥^१

ज्ञान इक सहज परमातमा को जानकर ।
 लोकालोक ज्ञेय के समूह को है जानता ।
 ज्ञान के समान दर्शन भी तो क्षायिक है ।
 वह भी स्वपर को है साक्षात् जानता ॥
 ज्ञान-दर्शन द्वारा भगवान आतमा ।
 स्वपर सभी ज्ञेयराशि को है जानता ॥

१. प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका, छन्द ४

(१४२)

(हरिगीत)
 यह आतमा न ज्ञान है दर्शन नहीं है आतमा ।
 रे स्वपर जाननहार दर्शनज्ञानमय है आतमा ॥
 इस अघविनाशक आतमा अर ज्ञान-दर्शन में सदा ।
 भेद है नामादि से परमार्थ से अन्तर नहीं ॥२७८॥
 इन्द्रियविषयहिमरवि सम्यग्दृष्टि निर्मल आतमा ।
 रे ज्ञान-दर्शन धर्म से संयुक्त धर्मी आतमा ॥
 में अचलता को प्राप्त कर जो मुक्तिरमणी को वरें ।
 चिरकालतक वे जीव सहजानन्द में स्थित रहें ॥२७९॥
 अरे जिनके ज्ञान में सब द्रव्य लोकालोक के ।
 इसतरह प्रतिबिंबित हुए जैसे गुंथे हों परस्पर ॥

(१४४)

ऐसे वीतरागी सर्वज्ञ परमातमा ।
 स्वपरप्रकाशी निज भाव को प्रकाशता ॥२७७॥
 (कुण्डलिया)
 अरे ज्ञान से आतमा, नहीं सर्वथा भिन्न ।
 अर अभिन्न भी है नहीं, यह है भिन्नाभिन्न ॥
 यह है भिन्नाभिन्न कथंचित् नहीं सर्वथा ।
 अरे कथंचित् भिन्न अभिन्न भी किसी अपेक्षा ॥
 जैनधर्म में नहीं सर्वथा कुछ भी होता ।
 पूर्वापर जो ज्ञान आतमा वह ही होता ॥६४॥^१

१. महासेन पण्डितदेव, ग्रंथ नाम और श्लोक संख्या अनुपलब्ध है ।

(१४३)

सुरपती नरपति मुकुटमणि की माल से अर्चित चरण ।
 जयवंत हैं इस जगत में निर्दोष जिनवर के वचन ॥६५॥^१
 ज्ञान का घनपिण्ड आतम अरे निर्मल दृष्टि से ।
 है देखता सब लोक को इस लोक में व्यवहार से ॥
 मूर्त और अमूर्त सब तत्त्वार्थ को है जानता ।
 वह आतमा शिववल्लभा का परम वल्लभ जानिये ॥२८०॥
 परमार्थ से यह निजप्रकाशक ज्ञान ही है आतमा ।
 बाह्य आलम्बन रहित जो दृष्टि उसमय आतमा ॥
 स्वरस के विस्तार से परिपूर्ण पुण्य-पुराण यह ।
 निर्विकल्पक महिम एकाकार नित निज में रहे ॥२८१॥

१. श्रुतबिन्दु, श्लोक संख्या अनुपलब्ध है ।

(१४५)

अत्यन्त अविचल और अन्तर्मग्न नित गंभीर है ।
 शुद्धि का आवास महिमावंत जो अति धीर है ॥
 व्यवहार के विस्तार से है पार जो परमात्मा ।
 उस सहज स्वात्मराम को नित देखता यह आतमा ॥२८२॥
 अमूर्त को अर मूर्त में भी अतीन्द्रिय प्रच्छन्न को ।
 स्व-पर को सर्वार्थ को जाने वही प्रत्यक्ष है ॥६६॥^१
 अनंत शाश्वतधाम त्रिभुवनगुरु लोकालोक के ।
 रे स्व-पर चेतन-अचेतन सर्वार्थ जाने पूर्णतः ॥
 अरे केवलज्ञान जिनका तीसरा जो नेत्र है ।
 विदित महिमा उसी से वे तीर्थनाथ जिनेन्द्र हैं ॥२८३॥

१. प्रवचनसार, गाथा ५४

(१४६)

‘मैं स्वयं सर्वज्ञ हूँ’ हूँ इस मान्यता से ग्रस्त जो ।
 पर नहीं देखे जगतत्रय त्रिकाल को इक समय में ॥
 प्रत्यक्षदर्शन है नहीं ज्ञानाभिमानी जीव को ।
 उस जड़ात्मन को जगत में सर्वज्ञता हो किसतरह? ॥२८४॥
 उत्पादव्ययध्रुवयुत जगत यह वचन हे वदताम्बरः ।
 सर्वज्ञता का चिह्न है हे सर्वदर्शि जिनेश्वरः ॥६७॥^१
 रे केवली भगवान जाने पूर्ण लोक-अलोक को ।
 पर अनघ निजसुखलीन स्वात्म को नहीं वे जानते ॥
 यदि कोई मुनिवर यों कहे व्यवहार से इस लोक में ।
 उन्हें कोई दोष न बोलो उन्हें क्या दोष है ॥२८५॥

१. बृहत्स्वयंभूस्तोत्र : भगवान मुनिसुव्रतनाथ की स्तुति, छन्द ११४

(१४७)

(दोहा)
 ज्ञानस्वभावी आतमा स्वभावप्राप्ति है इष्ट ।
 अतः मुमुक्षु जीव को ज्ञानभावना इष्ट ॥६८॥^१

(रोला)
 शुद्धजीव तो एकमात्र है ज्ञानस्वरूपी ।
 अतः आतमा निश्चित जाने निज आत्म को ॥
 यदि साधक न जाने स्वात्म को प्रत्यक्ष तो ।
 ज्ञान सिद्ध हो भिन्न निजात्म से हे भगवन् ॥२८६॥

१. आत्मानुशासन, छन्द १७४

(१४८)

(दोहा)
 ज्ञान अभिन है आत्म से अतः जाने निज आत्म ।
 भिन्न सिद्ध हो वह यदि न जाने निज आत्म ॥६९॥^१
 (सोरठा)
 आत्म दर्शन-ज्ञान दर्श-ज्ञान है आतमा ।
 यह सिद्धान्त महान स्वपरप्रकाशे आतमा ॥२८७॥
 (हरिगीत)
 सर्वार्थ जाने जीव पर अनरूप न परिणमित हो ।
 बस इसलिए है अबंधक ना ग्रहे ना उत्पन्न हो ॥७०॥^२

१. गाथा कहाँ की है, इसका उल्लेख नहीं है

२. प्रवचनसार, गाथा ५२

(१४९)

सहज महिमावंत जिनवर लोक रूपी भवन में ।
 थित सर्व अर्थों को अरे रे देखते अर जानते ॥
 निर्मोहता से सभी को नित ग्रहण करते हैं नहीं ।
 कलिमल रहित सद्ज्ञान से वे लोक के साक्षी रहें ॥२८८॥
 ईहापूर्वक वचनरचनारूप न बस इसलिए ।
 प्रकट महिमावंत जिन सब लोक के भरतार हैं ॥
 निर्मोहता से उन्हें पूरण राग-द्वेषाभाव है ।
 द्रव्य एवं भावमय कुछ बंध होगा किस तरह? ॥२८९॥
 अरे जिनके ज्ञान में सब अर्थ हों त्रयलोक के ।
 त्रयलोकगुरु चतुर्कर्मनाशक देव हैं त्रयलोक के ॥

(१५०)

इन्द्र आसन कंप कारण महत केवलज्ञानमय ।
 शिवप्रियामुखपद्मरवि सद्धर्म के रक्षामणि ॥
 सर्ववर्तन भले हो पर मन नहीं है सर्वथा ।
 पापाटवीपावक जिनेश्वर अगम्य महिमावंत हैं ॥२९२॥

(दोहा)

छह अपक्रम से सहित हैं जो संसारी जीव ।
 उनसे लक्षण भिन्न हैं सदा सुखी सिध जीव ॥२९३॥

(वीर)

देव और विद्याधरगण से नहीं वंघ प्रत्यक्ष जहान ।
 बंध छेद से अतुलित महिमा धारक हैं जो सिद्ध महान ॥
 अरे लोक के अग्रभाग में स्थित हैं व्यवहार बखान ।
 रहें सदा अविचल अपने में यह है निश्चय का व्याख्यान ॥२९४॥

(१५२)

न बंध है न मोक्ष है न मूर्छा न चेतना ।
 वे नित्य निज सामान्य में ही पूर्णतः लवलीन हैं ॥२९०॥
 धर्म एवं कर्म का परपंच न जिनदेव में ।
 रे रागद्वेषाभाव से वे अतुल महिमावंत हैं ॥
 वीतरागी शोभते श्रीमान् निज सुख लीन हैं ।
 मुक्तिरमणी कंत ज्ञानज्योति से हैं छा गये ॥२९१॥
 यत्न बिन ज्यों नारियों में सहज मायाचार त्यों ।
 हो विहार उठना-बैठना अर दिव्यध्वनि अरहंत के ॥७१॥^१

१. प्रवचनसार, गाथा ४४

(१५१)

(दोहा)

पंचपरावर्तन रहित पंच भवों से पार ।
 पंचसिद्ध बंदौ सदा पंचमोक्षदातार ॥२९५॥

(वीर)

राग-द्वेष के द्वन्द्वों में जो नहीं रहे अघनाशक है ।
 अखिल पापवन के समूह को दावानल सम दाहक है ॥
 अविचल और अखंड ज्ञानमय दिव्य सुखामृत धारक है ।
 अरे भजो निज आतम को जो विमलबोध का दायक है ॥२९६॥

(हरिगीत)

अपदपद में मत्त नित अन्धे जगत के प्राणियो ।
 यह पद तुम्हारा पद नहीं निज जानकर क्यों सो रहे ॥

(१५३)

जागो इधर आओ रहो नित मगन परमानंद में ।
हो परमपदमय तुम स्वयं तुम स्वयं हो चैतन्यमय ॥७२॥^१

(वीर)

भाव पाँच हैं उनमें पंचम परमभाव सुखदायक है ।
सम्यक् श्रद्धा धारकगोचर भवकारण का नाशक है ॥
परमशरण है इस कलियुग में एकमात्र अघनाशक है ।
इसे जान ध्यावें जो मुनि वे सघन पापवन पावक हैं ॥२९७॥
भव सुख-दुख अर जनम-मरण की पीड़ा नहीं रंच जिनके ।
शत इन्द्रों से वंदित निर्मल अद्भुत चरण कमल जिनके ॥
उन निर्बाध परम आतम को काम कामना को तजकर ।
नमन करूँ स्तवन करूँ मैं सम्यक् भाव भाव भाकर ॥२९८॥

१. समयसार : आत्मख्याति, छन्द १३८

(१५४)

भवकारक गुणमोह आदि भी जिसमें न हों ।
उसमें निजगुणरूप एक निर्वाण सदा है ॥३००॥
जिसने घाता पापतिमिर उस शुद्धातम में ।
कर्म नहीं हैं और ध्यान भी चार नहीं हैं ॥
निर्वाण स्थित शुद्ध तत्त्व में मुक्ति है वह ।
मन-वाणी से पार सदा शोभित होती है ॥३०१॥
बंध-छेद से नित्य शुद्ध प्रसिद्ध सिद्ध में ।
ज्ञानवीर्यसुखदर्शन सब क्षायिक होते हैं ॥
गुणमणियों के रत्नाकर नित शुद्ध शुद्ध हैं ।
सब विषयों के ज्ञायक दर्शक शुद्ध सिद्ध हैं ॥३०२॥

(१५६)

(दोहा)

आत्मसाधना से रहित है अपराधी जीव ।
नमूँ परम आनन्दघर आतमराम सदीव ॥२९९॥

(रोला)

जनम जरा ज्वर मृत्यु भी है पास न जिसके ।
गती-अगति भी नाहिं है उस परमतत्त्व को ॥
गुरुचरणों की सेवा से निर्मल चित्तवाले ।
तन में रहकर भी अपने में पा लेते हैं ॥७३॥^१
अनुपम गुण से शोभित निर्विकल्प आतम में ।
अक्षविषमवर्तन तो किंचित्मात्र नहीं है ॥

१. योगीन्द्रदेवकृत अमृताशीति, छन्द ५८

(१५५)

जिनमत संमत मुक्ति एवं मुक्तजीव में ।
हम युक्ति आगम से कोई भेद न जाने ॥
यदि कोई भवि सब कर्मों का क्षय करता है ।
तो वह परमकामिनी का वल्लभ होता है ॥३०३॥
तीन लोक के शिखर सिद्ध स्थल के ऊपर ।
गति हेतु के कारण का अभाव होने से ॥
अरे कभी भी पुद्गल जीव नहीं जाते हैं ।
आगम में यह तथ्य उजागर किया गया है ॥३०४॥
नियमसार अर तत्फल यह उत्तम पुरुषों के ।
हृदय कमल में शोभित है प्रवचन भक्ति से ॥

(१५७)

सूत्रकार ने इसकी जो अद्भुत रचना की ।
भविकजनों के लिए एक मुक्तीमारग है ॥३०५॥

(हरिगीत)

देहपादपव्यूह से भयप्रद बसें वनचर पशु ।
कालरूपी अग्नि सबको दहे सूखे बुद्धिजल ॥
अत्यन्त दुर्गम कुनयरूपी मार्ग में भटकन बहुत ।
इस भयंकर वन विषै है जैनदर्शन इक शरण ॥३०६॥
सम्पूर्ण पृथ्वी को कंपाया शंखध्वनि से आपने ।
संपूर्ण लोकालोक है प्रभु निकेतन तन आपका ॥
हे योगि! किस नर देव में क्षमता करे जो स्तवन ।
अती उत्सुक भक्ति से मैं कर रहा हूँ स्तवन ॥३०७॥

(१५८)

(हरिगीत)

तारागण से मण्डित शोभे नील गगन में ।
अरे पूर्णिमा चन्द्र चाँदनी जबतक नभ में ॥
हेयवृत्ति नाशक यह टीका तबतक शोभे ।
नित निज में रत सत्पुरुषों के हृदय कमल में ॥३११॥

• • •

(१६०)

सुकविजन पंकजविकासी रवि मुनिवर देव ने ।
ललित सूत्रों में रचा इस परमपावन शास्त्र को ॥
निज हृदय में धारण करे जो विशुद्ध आत्मकांक्षी ।
वह परमश्री वल्लभा का अती वल्लभ लोक में ॥३०८॥
पद्मप्रभमलधारि नामक विरागी मुनिदेव ने ।
अति भावना से भावमय टीका रची मनमोहनी ॥
पद्मसागरोत्पन्न यह है उर्मियों की माल जो ।
कण्ठाभरण यह नित रहे सज्जनजनों के चित्त में ॥३०९॥

(दोहा)

यदि इसमें कोइ पद लगे लक्षण शास्त्र विरुद्ध ।
भद्रकवि रखना वहाँ उत्तम पद अवरुद्ध ॥३१०॥

(१५९)

()